एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान

-राजमल पवैया

एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान

रचयिता :

कविवर राजमल पवैया, भोपाल

सम्पादक :

पण्डित अभयकुमार जैन

शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम.कॉम.

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान	:	राजमल पवैया
प्रथम तेरह संस्करण (26 जनवरी, 1996 से अद्यतन)	:	27 हजार 500
चौदहवाँ संस्करण (29 अगस्त, 2015) रक्षाबंधन	:	1 हजार
योग	:	28 हजार 500

मूल्य : ग्यारह रुपया

टाईपसैटिंग :
प्रिन्टोमैटिक्स
दुर्गापुरा, जयपुर
फोन : 2722274

मुद्रक :
सन् एन सन् प्रेस
तिलकनगर,
जयपुर (राज.)

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण एवं पीठिका	01
समुच्चय पूजन	04
सुदर्शनमेरु संबंधी चौंतीस तीर्थंकर पूजन	08
विजयमेरु संबंधी चौंतीस तीर्थंकर पूजन	23
अचलमेरु संबंधी चौंतीस तीर्थंकर पूजन	37
मंदरमेरु संबंधी चौंतीस तीर्थंकर पूजन	50
विद्युन्मालीमेरु संबंधी चौंतीस तीर्थंकर पूजन	60

प्रकाशकीय

पूजन-विधानों की श्रृँखला में 'एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान' के रूप में यह नवीनतम कड़ी जोड़कर हम अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। यह विधान कविवर राजमलजी पवैया द्वारा प्रथम बार लिखा गया है और इसे सर्वप्रथम प्रकाशित करने का गौरव हमें प्राप्त हुआ है।

इससे पूर्व हमारे विशेष अनुरोध को स्वीकार करके पवैयाजी ने इन्द्रध्वज विधान, पंचपरमेष्ठी विधान, शान्ति विधान, बीस तीर्थंकर विधान आदि अनेक विधानों की रचना करके भक्ति साहित्य को समृद्ध किया है।

इन्द्रध्वज विधान तथा बीस तीर्थंकर विधान करते हुए जिनागम में उपलब्ध यह तथ्य विशेष रूप से ध्यान में आया है कि ढाईद्वीप में कुल 170 विजयार्धों से सम्बन्धित देशों में एक साथ 170 तीर्थंकर भी कभी-कभी हो सकते हैं। जब चौबीस तीर्थंकरों और विदेह क्षेत्र में सदैव विद्यमान बीस तीर्थंकरों का गुणगान करने के लिये एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान क्यों नहीं हो सकता? परिणामों की विशुद्धि के प्रयोजन से जिनेन्द्रदेव के गुणानुवाद के लिये श्रावक को अनेक प्रकार के माध्यम चाहिए। अतः इस विधान की परिकल्पना ने मस्तिष्क में जन्म लिया और तत्काल पवैयाजी से अनुरोध किया गया कि 170 तीर्थंकरों के नाम खोजकर इस विधान की रचना कर दें।

अनेक प्रयासों के फलस्वरूप यह तो ज्ञात हुआ कि भरतक्षेत्र की वर्तमान चौबीसी के द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के काल में ढाईद्वीप में 170 तीर्थंकर हुए थे। परन्तु उनके पृथक्-पृथक् नामों का उल्लेख नहीं मिलता, अतः प्रत्येक तीर्थंकर से सम्बन्धित मेरु, क्षेत्र, देश आदि का उल्लेख करके उन्हें अर्घ्य समर्पित करने वाले छन्दों की रचना की गई।

सर्वप्रथम समुच्चय पूजन, तथा पाँचों मेरु से सम्बन्धित चौंतीस-चौंतीस तीर्थंकरों की पाँच पूजनें इस प्रकार कुल 6 पूजनों से तथा पाँच पूजनों में चौंतीस-चौंतीस अर्घ्यों के कुल 170 छन्दों से सुशोभित इस लघुकाय विधान का जन्म हुआ।

अन्य विधानों की तरह इस विधान में भी सिद्धचक्र विधान की शैली का अनुकरण करते हुए भक्ति, अध्यात्म और सिद्धान्त की त्रिवेणी प्रवाहित करने का प्रयास किया गया है। मात्र 6 पूजनें होने से इनमें परम्परागत भक्तिभाव, जन्म-जरा आदि से मुक्ति की कामना तथा मुक्ति के कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सम्बन्धित भावों का रंग भरा गया है। ग्रन्थराज समयसार की कुछ महत्त्वपूर्ण गाथाओं की अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका के भाव

जयमाला में भरने का अभिनव प्रयोग करके इस विधान को अध्यात्मरस छलकते हुए कलश का रूप देने का प्रयास किया गया है। आचार्य समन्तभद्रकृत देवागम स्तोत्र के 16 छन्दों के भाव भरकर न्यायगर्भित स्तुति की परम्परा को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया गया है।

मात्र 15-20 दिनों के अल्प समय में इस अनूठी कृति की रचना के लिए श्री पवैयाजी निःसंदेह अगणित बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं। यदि कहा जाए कि उन्हें विधान लिखने का व्यसन हो गया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अन्य अनेक विधानों के समान इस विधान का सम्पादन भी पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री ने किया है। अल्पसमय में सुन्दर एवं शुद्ध मुद्रण तथा प्रकाशन व्यवस्था का दायित्व श्री अखिल बंसल ने सम्हाला है। यद्यपि ये दोनों महानुभाव हमारे ही परिवार के अंग है तथापि इस विशेष श्रम के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

सिद्धचक्र विधान आदि बड़े विधान कराने में 8-10 दिन लगते हैं परन्तु यह विधान 5-6 दिन में ही सम्पन्न हो जाता है तथा प्रतिदिन एक पूजन होने से प्रातः प्रवचन का लाभ भी समाज को मिल सकेगा – इस दृष्टि से यह विधान अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

इस विधान के निमित्त से अधिकतम आत्मार्थी भाई विशुद्धभावों के माध्यम से आत्मकल्याण करें – यही हार्दिक भावना हैं।

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

महामंत्री

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

ॐ

श्री एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान

मंगलाचरण

अनुष्टुप्

मंगलं सिद्ध परमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरम्।
मंगलं शुद्ध चैतन्यं आत्मधर्मोस्तु मंगलम्॥

वसंततिलका

तीर्थाधिराज तीर्थेश णमोजिणाणं।
अरहंत सप्तरिसयं घनघातिमुक्तं॥
त्रैलोक्य-पूज्य जिनपति सर्वज्ञदेवं।
ध्यायंति 'सप्ततिशतं' जिनवल्लभानाम्॥

दोहा

एक शतक सत्तर हुए तीर्थंकर भगवान।
ढाई द्वीप के क्षेत्र में एक संग द्युतिवान॥

अजितनाथ प्रभु के समय श्री जिनवर तीर्थेश।
निज पुरुषार्थ स्वशक्ति से हुए सभी सिद्धेश॥

जिन आगम अनुसार ही पूजूँ सर्व जिनेश।
निर्विकल्प पाऊँ दशा धारूँ जिन मुनिवेश॥

श्रेष्ठ मंगलाचरण है तीर्थंकर की भक्ति।
जाग्रत होती हृदय में मुक्ति प्राप्ति की शक्ति॥

विनय सहित वन्दूँ प्रभो निरखूं आत्मस्वरूप।
मैं चैतन्य कुमार हूँ पूर्ण शुद्ध चिद्रूप॥

पीठिका

वीरछंद

अखिल विश्व में तीन लोक हैं अधो मध्य अरु ऊर्ध्व विशाल।
अधोलोक में नरकादिक हैं ऊर्ध्व लोक स्वर्गादि विशाल॥
त्रिलोकाग्र में सिद्धशिला है जहाँ विराजे सिद्ध अनंत।
तीर्थंकर पद त्याग तीर्थंकर भी होते सिद्ध महंत॥

मध्य लोक में असंख्यात सागर अरु द्वीप असंख्य सुख्यात।
ढाई द्वीप हैं इनमें जिनमें पंच मेरु हैं जग विख्यात॥
मेरु सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली सुखकार।
पेंतालीस लाख योजन है ढाई द्वीप का शुभ विस्तार॥

ढाई द्वीप में एक शतक बत्तीस सूर्य होते गतिमान।
एक शतक बत्तीस चंद्र हैं दिव्य प्रभा से शोभावान॥
ढाई द्वीप तक मनुज क्षेत्र है कर्म भूमि संयुक्त प्रधान।
फिर है मानुषोत्तर पर्वत मनुज नहीं आगे गतिमान॥

पंच भरत अरु पंचैरावत ये दस क्षेत्र प्रसिद्ध प्रधान।
आर्यखंड में कर्म भूमियां एक शतक सत्तर छविमान॥
इन क्षेत्रों में एक शतक सत्तर तीर्थंकर हों प्रख्यात।
किन्तु बीस तीर्थंकर स्वामी विद्यमान रहते विख्यात॥

सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात, स्वयंप्रभ देव।
ऋषभानन, अनंतवीर्य, सूर्यप्रभ, विशालकीर्ति सुदेव॥
श्री वज्रधर चंद्रानन प्रभु, चंद्रबाहु भुजंगम ईश।
जयति ईश्वर, जयति नेमिप्रभु वीरसेन, महाभद्र, महीश॥

पूज्य यशोधर, अजितवीर्य, जिन बीस जिनेश्वर परम महान।
विचरण करते हैं विदेह में शाश्वत तीर्थंकर भगवान॥
कल्पकाल बहु जाने पर ही एक समय ऐसा आता।
एक शतक सत्तर तीर्थंकर चरण पूज जग हरषाता॥

नाम नहीं उपलब्ध सभी के बिना नाम ही करूँ प्रणाम।
हुए ज्ञानमय एक साथ जो विनय सहित वन्दूँ वसुयाम॥
वर्त्तमान जिन चौबीसी के अजितंनाथ जिन प्रभु के काल।
एक शतक सत्तर तीर्थंकर एक साथ हो चुके विशाल॥

एक साथ इतने तीर्थंकर कभी कभी ही होते हैं।
महाभाग्य उनका जगता जिनके सन्मुख ये होते हैं॥
इनके समवशरण में द्वादश सभा मध्य अनगिनती जीव।
दिव्यध्वनि सुन निज हित करते हर्षित होते भव्य सदीव॥

ये सब आर्य खण्ड कहलाते कर्म भूमियों सहित प्रसिद्ध।
जिन तीर्थंकर होते रहते आत्मशक्ति से अविचल सिद्ध॥
सर्वोत्तमयश प्रकृति तीर्थंकर का भी प्रभु करते नाश।
निज सिद्धत्व प्रकटकर सबही पाते सिद्धलोक आवास॥

भूत भविष्यत् वर्तमान के तीर्थंकर अनंत वन्दूँ।
सिद्धचक्र राजित सिद्धों को विनयपूर्वक अभिनन्दूँ॥
इन सबकी पूजन करने का भाव हृदय में जागा आज।
जिनदर्शन करते ही मानो मिथ्याभ्रम का रहा न राज॥

सिद्धों के गुण गाते-गाते पुलकित है अब मेरा गात।
जीवन में सुख-शान्ति प्राप्त हो, यही चाहता मैं सौगात॥
इन सबको वंदन करता हूं विनय भक्ति से भलीप्रकार।
मिथ्यातम हर समकित पाऊँ संयम धर होऊँ भवपार॥

दोहा

एक शतक सत्तर नमूँ तीर्थंकर भगवान।
आत्मशक्ति के तेज से पाऊँ पद निर्वाण॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

*

१

समुच्चय पूजन

चान्द्रायण

ढाई द्वीप में एक शतक सत्तर जिनेश ।
एक साथ हो चुके आज पूजूँ महेश ॥
सर्व जिनेश्वर पूजूँ स्वामी शक्ति से ।
तीर्थंकर सब वन्दूँ निर्मल भक्ति से ॥

दोहा

आह्वानन करता प्रभो, हृदय विराजो आज ।
रत्नत्रय निधि दो मुझे तीर्थंकर जिनराज ॥
अहो ! अत्र अवतर विभो ! अत्र तिष्ठ हे नाथ ।
भक्तिभाव रंग में रंगा, तजूँ न तुव पद साथ ॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतरअवतरसंवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरु सम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर जिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

गीतिका

चैतन्यवत् निर्मल सलिल, जिनचरण में अर्पित करूँ ।
ज्ञान सम्यक् प्राप्त करके जन्म मृत्यु जरा हरूँ ॥
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना ।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना ॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपंचमेरू विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म -जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैतन्य चन्दनविटप पर हैं सर्प लिपटे मोह के ।
जिन मयूरी ध्वनि सुनी तो भाग जाते द्रोह से ॥

एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य का वैभव अखंडित वही अक्षय पद महा।
स्वानुभव की स्वरसधारा शिव विधायक है अहा॥ एक शत.॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसंबंधी एकशतकसत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्यसुमनों की सुरभि से काम-शत्रु विनाशते।
वासना की सर्पिणी को एक क्षण में नाशते॥ एक शत.॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य चिन्तामणि महाचरु परम शिवमय शान्ति कर।
प्राणियों को सिद्धनन्दन बनाता भवभ्रान्ति हर॥ एक शत॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य की चिन्मय चमक अरु मोहतम की कालिमा।
भिन्नता के भान से प्रकटी चिदातम लालिमा॥ एक शत.॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य की ध्यानाग्नि में कर्म ईंधन जल रहा।
शुद्धात्मा के आश्रय से भाव निर्मल पल रहा॥ एक शत.॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनायधूपं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य तरु की शाख पर फल रत्नत्रय के फल रहे।
मुक्ति फल भी सहज फलता ज्ञान-आनंद रस बहे॥ एक शत.॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य का वैभव महा अनर्घ्यमय अनमोल है।
पुण्य के आधीन वैभव का करूँ क्या मोल है॥
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

करें आप्त मीमांसा समन्तभद्राचार्य।
प्रस्तुत है अनुवाद यह भविजन को हितकार[1]॥

वीरछन्द

देवागमन तथा नभ में गति, छत्र चँवर अनुपम छविमान।
मायावी जन में भी दिखते, मात्र इसलिए नहीं महान॥ १॥

बाह्यान्तर अतिशय तन के भी, देवों में देखे जाते।
इसीलिए प्रभु इस वैभव से, नहीं पूज्यता को पाते॥ २॥

आगम के आधार तथा, जो धर्मतीर्थ के संचालक।
उनमें है विरोध, आप्त सब नहीं, एक हो प्रतिपालक॥ ३॥

दोष और आवरण हानि अतिशायन हेतु दिखलाता।
अन्तर्बाह्य मलक्षय भी है, ध्यान-अग्नि से हो जाता[2]॥४॥

सूक्ष्म और दूरस्थ अन्तरित, विशद ज्ञानवर्ती होते।
हैं अनुमेय यथा अग्न्यादि, अतः सर्वज्ञ सिद्ध होते॥ ५॥

युक्ति-शास्त्र अविरोधी वचनों से हे जिन! तुम ही हो निर्दोष।
तुम्हें इष्ट जो वह अविरोधी, प्रत्यक्षादि न देते दोष॥ ६॥

प्रभु के मत-अमृत से बाहर जो एकान्त सर्वथा वाद।
अरे! दग्ध आप्ताभिमान से, इष्ट तत्त्व जो उसमें बाध॥ ७॥

---

१. यह जयमाला देवागम स्तोत्र के सोलह छन्दों का हिन्दी पद्यानुवाद है।

२. रागादि दोषों और ज्ञानावरणादि की हीनता से उनके क्षय का अनुमान अतिशायन हेतु से होता है।

एकान्तों के आग्रह से जो ग्रस्त स्व-पर के बैरी हैं।
कर्म शुभाशुभ अपुनर्भव की अव्यवस्था अतिगहरी है ॥ ८ ॥

वस्तु यदि एकान्तभावमय, हो अभाव नहिं किंचित् भी।
सब सर्वात्मक, अस्वरूपी, बिन आदि अन्त, स्वीकार नहीं ॥ ९ ॥

यदि नहिं मानें प्रागभाव तो, कार्यारम्भ नहीं होगा।
यदि प्रध्वंस-अभाव न मानें, अन्त कार्य का नहिं होगा ॥ १० ॥

यदि अन्योन्याभाव न हो तो एकरूप हों सब पुद्गल।
यदि अत्यन्ताभाव न मानें सर्व द्रव्य सबमय तिहुँकाल ॥ ११ ॥

यदि अभाव सर्वथा वस्तु का, भावों का सर्वथा निषेध।
अप्रामाणिक हों ज्ञान-वचन, निज-पर मण्डन-खण्डन कैसे? ॥ १२ ॥

द्वय एकान्तों में विरोध है, स्याद्वाद विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो वस्तु वाच्य इस वाणी से ॥ १३ ॥

तुम्हें इष्ट है वस्तु कथञ्चित् सत्ता और असत्ता रूप।
उभय कथञ्चित् नय पद्धति से, नहीं सर्वथा वस्तु स्वरूप ॥ १४ ॥

द्रव्य, क्षेत्र, निज काल, भाव से, सत् पदार्थ नहिं माने कौन ?।
और असत् पर द्रव्य आदि से नहिं मानें अव्यवस्थित भौन ॥ १५ ॥

यदि क्रम से कहना चाहें तो वस्तुरूप है भाव-अभाव।
अक्रम से है अवक्तव्य यह, शेष भंग स्वापेक्ष स्वभाव ॥ १६ ॥

सोरठा

अनेकान्तमय वस्तु, कहते हैं जिनराज सब।
सद्धर्म-वृद्धिरस्तु, इसके सम्यग्ज्ञान से ॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

२

श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी

चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछंद

जम्बूद्वीप सुमेरु, सुदर्शन, सम्बन्धी जिनवर चौंतीस।
सादर सविनय अष्टद्रव्य से, पूजन करूँ झुकाऊँ शीश॥
सोलह पूर्व विदेह और सोलह पश्चिम विदेह जिन ईश।
इक उत्तर ऐरावत अरु इक दक्षिण भरत विगत जगदीश॥

धर्म मार्ग पर प्रयाण करके, आत्मोत्पन्न सौख्य पाऊँ।
सम्यग्दर्शन का बल लेकर, सिद्ध स्वपद निज प्रगटाऊँ॥
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
निज को निज, पर को पर जानूँ, शुद्धातम का लूँ आधार॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

भुजंगप्रयात

निजातम की महिमामय जलपान करके
संयम की तरणी का लें अब सहारा।
इसी एक तरणी ने अब तक अनंतों,
सुभव्यों को भवोदधि पार उतारा॥

सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ॥
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय चन्दन लगाया,
विषय-भोग का ताप अब नष्ट होगा॥
संयम सुधा का रसपान कर लें,
हमें फिर न कोई कभी कष्ट होगा॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ॥
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरु सम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय अक्षत अनूठे,
मुझे तार देंगे जगत के दुखों से।
अनन्ते गुणों में अखण्डित चिदातम,
सुशोभित होता अनन्त सुखों से॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षय-पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय सुरभित सुमन से,
कभी कामबाणों की पीडां न होगी।
स्वपद पूर्ण निष्काम होगा हृदय में,
विभावों की कोई भी क्रीड़ा न होगी ॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ ॥
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो काम-बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय चरु को चखूँ मैं,
क्षुधावेदना क्षीण होगी निमिष में।
अतीन्द्रिय आनन्द रसास्वाद लेकर,
नहीं लीन होउँ में विषयों के विष में ॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ ॥
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बू द्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय दीपक जलाया,
महामोहतम शीघ्र विध्वंस होगा।
स्वयं ज्ञान-ज्योति है व्यापी जगत में,
अतीन्द्रिय आनन्द का अंश होगा ॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।

महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ॥

ॐ ह्री श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय अनुपम अनल में,
जले धूप अष्टांग कर्मों की पल में।
नहीं होंगे घाति-अघाति कहीं भी,
उन्हें भेज दूँ मैं रसातल के तल में॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ॥
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ॥

ॐ ह्री श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय स्वाधीन तरु पर,
महामोक्षफल काललब्धि में फलता।
स्वसन्मुख पुरुषार्थ होता सहज ही,
सहज में ही अनुकूल निमित्त मिलता॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ॥
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय अर्घ्य सजाया,
पाया अनन्ते गुणों का सुमेला।

अतीन्द्रिय अन्-अर्घ्य वैभव को पाकर,
सिद्ध संमूह में रहूंगा अकेला ॥
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

चौपाई

मेरु सुदर्शन पूर्व विदेह, अरु पश्चिम भी क्षेत्र विदेह।
सोलह-सोलह हैं बत्तीस, भावसहित पूजूँ जगदीश ॥
दक्षिण एक भरत के जान, इक ऐरावत उत्तर मान।
इन सब क्षेत्रों में जिनईश, तीर्थंकर पूजूँ चौंतीस ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

चान्द्रायण

कच्छा देश सुक्षेमा नगरी जानिये।
समवशरण तीर्थंकर प्रभु का मानिये ॥
आत्मज्ञान का संबल मैं पाऊँ प्रभो।
शुद्ध भावना अंतरंग लाऊँ विभो ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुकच्छा क्षेमपुरी तो मध्य है।
तीर्थंकर अरहंत सुछवि द्रष्टव्य है ॥
स्वपर भेद विज्ञान जाग्रत हो हृदय।
नाथ सजाऊँ समकित से अपना निलय ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री जंबूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुकच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महाकच्छा जु अरिष्टा नगर है।
समवशरण तीर्थंकर का शिव डगर है॥
सम्यक्-दर्शन पूर्वक सम्यक्-ज्ञान हो।
विदेहत्व पाने का यत्न महान हो॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री जंबूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महाकच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश कच्छकावती अरिष्टपुरी महान।
यहाँ विराजे तीर्थंकर त्रिभुवन प्रधान॥
सम्यक्-ज्ञान पूर्वक प्रभु चारित्र हो।
निज-आत्मा मेरा परम पवित्र हो॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छकावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवर्ता है देश नगर खड़गा प्रसिद्ध।
तीर्थंकर प्रभु पद पूंजूँ हो भाव विद्ध॥
जिनवर समवशरण अति मंगलदाय है।
रत्नत्रय की तरणी शिवपददाय है॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य आवर्त्तादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश लांगलावर्त्ता मंजूषा नगर।
तीर्थंकर जिन समवशरण जग में प्रवर॥
एक देश संयम प्रभु उर को भा गया।
पूर्ण देश संयम भी उर में छा गया॥ ६॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य लांगलावर्त्तादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकला औषध नगरी है विशाल।
तीर्थंकर पूजन से होते सब निहाल॥
सप्तम षष्टम गुणस्थान झूलूँ प्रभो।
अप्रमत्त हो प्रमत्तपन भूलूँ विभो॥७॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकलावती नगर पुण्डरीकिणी।
तीर्थंकर जिन छवि है भव दुख हारिणी॥
श्रेणी चढ़ाने का उपाय प्रभु हो सफल।
आप कृपा से क्षायिक ही पाऊँ प्रबल॥८॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वत्सा देश सुसीमा नगर पिछानिये।
तीर्थंकर के दर्शन कर अघ हानिये॥
अष्टम गुणस्थान में अब आऊँ प्रभो।
भाव अपूर्व करण का ही पाऊँ विभो॥९॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्व विदेहस्य वत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुवत्सा नगर कुन्डला दिव्य है।
तीर्थंकर जिन समवशरण अति भव्य है॥
पाऊँ प्रभु अनिवृत्तिकरण अन्तर्मुहूर्त।
कहीं भूल से गिरे न नीचे हृदय धूर्त्त॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुवत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावत्सा नगरी अपराजिता।
तीर्थंकर प्रभु समवशरण शुभ साजता॥

दशम सूक्ष्म सांपराय अब पाऊँ प्रभो ।
फिर बारहवें की ही ओर बढ़ूँ विभो ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महावत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश वत्सकावती नगन सुप्रभंकरा ।
समवशरण तीर्थंकर लख आस्रव डरा ॥
ग्यारहवां उपशान्त कषाय न हो प्रभो ।
गिरने का भय सच्चा हो न कभी विभो ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य वत्सकावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रम्या देश नगर अंकावती है प्रधान ।
तीर्थंकर जिनराज विराजे हैं महान ॥
बारहवें में पूर्ण मोह अरि क्षीण हो ।
क्षय कषाय करता जो ज्ञान प्रवीण हो ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश सुरम्या नगरी पद्मावती शुभम् ।
तीर्थंकर जिनराज विराजे प्रभु परम ॥
बारहवाँ है गुणस्थान निज सुख रमन ।
क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ बन ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुरम्या देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रमणीया है देश शुभा नगरी महान ।
तीर्थंकर जिनदेव विराजे हैं प्रधान ॥
मिले सयोग केवली तेरहवाँ सुथल ।
वीतराग अरहंत दशा सर्वज्ञ बल ॥ १५ ।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्व विदेहस्य रमणीयादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश मंगलावती रत्नसंचया नगर।
तीर्थंकर बतलाते शिवपुर की डगर॥
सर्व द्रव्य गुण पर्यायें युगपत् सुजान।
तीन काल तीनों लोकों का पूर्ण ज्ञान॥ १६॥

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य मंगलावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई

अब विदेह पश्चिम तीर्थेश, पूजूँ सोलह सर्व जनेश।
जब तक शिवपद मिले न नाथ, तब तक तजूँ न तुम पद साथ॥

रोम-रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।
जिन मंदिर में श्री जिनराज, तन मंदिर में चेतन राज॥

एक शतक सत्तर जिनईश, एक संग हो चुके महीश।
भाव सहित वन्दूँ जिनदेव, मैं भी सिद्ध बनूँ स्वयमेव॥

चान्द्रायण

पद्मा देश मध्य में अश्वपुरी नगर।
अंतरीक्ष तीर्थंकर राजे हैं प्रखर॥
केवलज्ञान प्रकट होता निजशक्ति से।
जब जुड़ता है जीव सुनिश्चय भक्ति से॥ १७॥

ॐ ह्रीं श्री जंबूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुपद्मा सिंहपुरी प्रख्यात है।
तीर्थंकर जिन समवशरण विख्यात है॥
जब विहार करते जिनवर के चरणतल।
देव रचा करते दो सौ पच्चीस कमल॥ १८॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महापद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महापद्मा में महापुरी मनोज्ञ।
तीर्थंकर प्रभु श्रेष्ठ जगत में पूर्ण योग्य॥
समवशरण में द्वादश सभा जुडी सहज।
जिनध्वनि सुन मति शिव सुख हेतु मुड़ी सहज॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महापद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पद्मावती विजय पुरी है महान।
तीर्थंकर जिनदेव हुए जग में प्रधान॥
अष्ट भूमियाँ वसु प्राचीरों सहित हैं।
समवशरण के प्राणी भय से रहित हैं॥२०॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्मावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शंखा देश नगर अरजा पहचानिये।
तीर्थंकर दर्शन कर सुख उर आनिये॥
वसु मंगल द्रव्यों की तो भरमार है।
अष्ट प्रातिहार्यों की सुछवि अपार है॥२१॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य शंखादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नलिनी देश नगर विरजा भी झूमता।
तीर्थंकर जिन चरण कमल रज चूमता॥
धर्म चक्र आगे आगे है चल रहा।
जितना है एकान्त उसे यह दल रहा॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य नलिनीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुमुदा देश अशोका नगर विशाल है।
तीर्थंकर दर्शन पा देश निहाल है॥

समवशरण में जिनध्वज लहराते अनेक।
भव्य जीव तजते मिथ्या भ्रम की कुटेक ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य कुमुदादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरित देश में नगर वीतशोका प्रधान।
तीर्थंकर प्रभु समवशरण सबसे महान ॥
वैरभाव तो समवशरण में है नहीं।
सौ योजन तक तो दुष्काल कहीं नहीं ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सरितदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वप्रादेश जु विजया नगरी है विशाल।
तीर्थंकर दर्शन से जग जाता स्वकाल ॥
महासुगंधित वायु सदा चलती यहाँ।
षड् ऋतु के फल-फूल सभी फलते यहाँ ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुवप्रा नगर वैजयंती चलो।
तीर्थंकर दर्शन कर भव कल्मष दलो ॥
दर्पण तल सम भूमि स्वच्छ तो देखिये।
शीतल मंद पवन निज तन पर लेखिये ॥ २६ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुवप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावप्रा सुजयंती नगर है।
तीर्थंकर का समवशरण शिव डगर है ॥
कूप वापिका आदि सरोवर नीर से।
होते हैं परिपूर्ण सजल गंभीर से ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महावप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वप्रकावती नगर अपराजिता।
तीर्थंकर जिन समवशरण है साजता॥
नभ निर्मल उल्का पातादिक से रहित।
होता कोई नहीं रोग आदिक सहित ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रकावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंधा देश सुचक्रपुरी प्रख्यात है।
तीर्थंकर का सुयश जगत विख्यात है॥
सुर गंधोदक वर्षा करते प्रेम से।
साधक दर्शन कर जुड़ते नित नेम से ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुगंधा खड्गपुरी गरिमामयी।
तीर्थंकर जिनवर की छवि महिमामयी॥
आदि-आदि अतिशय अनेक बहु जानिये।
प्रकृति तीर्थंकर का उदय पिछानिये ॥ ३० ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुगंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधिला नगर अयोध्या श्रेष्ठ है।
तीर्थंकर पद छोड़ सभी कुछ नेष्ठ है॥
तेरहवें का अंत समय अब आ गया।
इसीलिये तो योग सर्व घबरा गया ॥ ३१ ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधिलादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधमालिनी अबध्या जानिये।
तीर्थंकर प्रभु सिद्ध हो गये मानिये॥

गुणस्थान चौदहवां पाकर तज दिया।
आत्मज्ञान का सम्यक् फल पूरा लिया॥
योग अभाव किया तत्क्षण ही हे विभो।
एक समय में सिद्ध स्वपद पाया प्रभो॥ ३२॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधमालिनी देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीर छंद

दक्षिण भरत अयोध्या नगरी भव्यजनों को अति सुखकार।
अजित जिनेश्वर का मंगलमय दर्शन, मोह-तिमिर क्षयकार॥
श्री जिनवर के चरण-कमल में सादर शीश झुकाऊँगा।
नवतत्त्वों में छिपी हुई जो ज्योति उसे प्रकटाऊँगा॥ ३३॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी भरतक्षेत्रे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तयेअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर ऐरावत सुअयोध्या नगरी अति सुखकारी है।
श्री तीर्थंकर देव विराजे महिमा जिनकी भारी है॥
श्री जिनवर के चरण-कमल में सादर शीश झुकाऊँगा।
नवतत्त्वों में छिपी हुई जो ज्योति उसे प्रकटाऊँगा॥ ३४॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी ऐरावतक्षेत्रे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाअर्घ्य

ताटंक

निःशंकित निःकांक्षित होकर शुद्ध आत्मा अपनाऊँ।
निर्विचिकित्सामय भावों से गुरु चरणों में चित लाऊँ॥
मूढ दृष्टि का करूँ विसर्जन त्रैकालिक ध्रुव को ध्याऊँ।
उपगूहन थितिकरण भावमय निज प्रभावना मैं पाऊँ॥

निज के प्रति वात्सल्यभाव से निश्चय धर्म वृद्धि पाऊँ।
भावों का यह अर्घ्य समर्पित करके निज में रम जाऊँ॥

जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनेश भजूँ ।
पद अनर्घ्य पाकर हे स्वामी सर्व विकारी भाव तजूँ ॥

दोहा

महा अर्घ्य अर्पित करूँ, परम विनय से आज ।
विषयकषायों से रहित हो जाऊँ जिनराज ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

निजस्वभाव को जानकर करूँ सहज पुरुषार्थ ।
मिले निमित्त स्वकाल में प्रकट होय परमार्थ ॥

हरिगीतिका

क्षयोपशम से तत्त्वज्ञान विशुद्ध भावों से करूँ ।
देशना झेलूँ प्रभू की आत्मा को अब वरूँ ॥
भाव हो प्रायोग्यमय तो करणलब्धिपथ बढ़ूँ ।
एकत्व ज्ञायक भाव में सम्यक्त्व निधि को अब वरूँ ॥

ध्रुव त्रिकाली आत्मा की त्वरित अंतर खोजकर ।
लक्ष्य में लूँ फिर त्रिकाली ध्रुव हृदय में ओजभर ॥
आत्महित का लक्ष्य मेरा सभी त्याग कषायरस ।
पूर्णता का लक्ष्य लूँ मैं पी महान स्वभाव रस ॥

ज्ञानमय यदि परिणमन है, तो सुनिश्चित सिद्धपद ।
अज्ञानमय यदि परिणमन है, तो सुनिश्चित है कुपद ॥
भिन्न-भिन्न प्रकार की मैं कल्पना में लीन हूँ ।
बहिर्भावों से दुखी हूँ नहीं मैं स्वाधीन हूँ ॥

आत्मार्थी जीव पीता, आत्मरस यदि चाव से ।
दृष्टि में हो त्रिकाली ध्रुव शुद्ध निर्मल भाव से ॥

त्याग सर्व विभावरस को अब पियूँ चैतन्यरस ।
निर्विकल्प दशा मिली तो तज दिया सविकल्प रस ॥
पापरस क्षय हो चुका है, पुण्य का भी रस नहीं ।
अब मुझे संकल्प और विकल्प में भी रस नहीं ॥

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याईये,
उनकी गौरव गाथा सुन हरषाईये ।
जिन पूजन आनंदमयी शिवदाय है,
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है ।
मोह शत्रु का नाश करूँ निजभाव से,
पाऊं निजपद राज विशुद्ध स्वभाव से ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

भजन

ऊँचे ऊँचे शिखरों वाले रे, य ह तीरथ हमारा ।
तीरथ हमारा हमें लागे प्यारा ।।टेक ॥

श्री जिनवर से भेंट करावें ।
जग को मुक्ति मार्ग दिखावें ॥
मोह का नाश करावे रे यह तीरथ हमारा ।।१ ॥

जड-चेतन को भिन्न बतावे ।
चेतन की महिमा दरशावे ॥
भेद-विज्ञान करावे रे यह तीरथ हमारा ।।२ ॥

रंग राग से भिन्न बतावे ।
शुद्धातम का रूप दिखावे ॥
मुक्ति का मार्ग दिखावे रे यह तीरथ हमारा ।।३ ॥

३

पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चौतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछंद

खण्ड धातकी विजयमेरु पूरब का क्षेत्र विदेह प्रसिद्ध।
सोलह-सोलह पूर्व और पश्चिम तीर्थंकर जिन सुप्रसिद्ध॥
इक ऐरावत उत्तर-दक्षिण भरत एक सब मिल चौतीस।
सादर सविनय अष्ट-द्रव्य ले पूजन करूँ झुकाऊँ शीश॥

ज्ञानमार्ग पर गमन करूँ मैं, आत्मोत्पन्न सौख्य पाऊँ।
भेद-ज्ञान का दीप जलाकर चेतनज्योति विकसाऊँ॥
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
नय प्रमाण से निज को जानूँ निर्विकल्प आनन्द अपार॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

विजया

ज्ञान में मोह की है मलिनता दिखी,
भेद-विज्ञान से उसको पर जानकर।
शुद्ध चैतन्य सन्मुख उपयोग से,
मोह मल का प्रभो ! आज प्रक्षाल कर॥
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।

शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रगट लालिमा ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञान में ज्ञेय की गन्ध आयी नहीं,
मोह दुर्गन्ध से क्यों मैं पीड़ित हुआ ?
शुद्ध चैतन्य की गन्ध में मस्त हो,
आज उपयोग निज में ही कीलित हुआ ॥
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा ।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रगट लालिमा ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञेय आकार से ज्ञान खण्डित नहीं,
जान ली आज महिमा अखण्ड ज्ञान की ।
द्रव्य गुण और पर्याय में व्याप्त जो,
निजकी सत्ता अखण्डित पहचान ली ॥ हे. ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञान के पुष्प चैतन्य सर में खिले,
काम की कीच में भी कमल ज्ञान का ।
वासना शूल से भी सदा भिन्न जो,
आज महका सुमन भेद-विज्ञान का ॥हे. ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञान का रस अतीन्द्रिय सुहाया मुझे,
ज्ञेय की लुब्धता का हुआ है शमन।
शुद्ध चैतन्य रस लीन उपयोग से,
पूर्ण तृप्त हुआ है प्रभो ! आज मन ॥ हे. ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान में ज्ञान को ज्ञान जाने नहीं,
कौन कहता उसे ज्ञान की बानगी।
ज्ञान में जो समर्पित है ज्ञेयावली,
घोषणा ही करे ज्ञान सामान्य की ॥ हे. ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरु सम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान की तेजमय प्रज्ज्वलित हो अनल,
कर्म ईधन जलाऊँ प्रभो आज मैं।
मोह की राजधानी हुई भस्म अब,
शुद्ध चैतन्य का हो तिलकराज अब ॥ हे. । ।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान में ज्ञान का स्वाद जाना नहीं,
ज्ञेय मिश्रित चखा आज तक ज्ञानफल।
शुद्ध चैतन्य तरु का अतीन्द्रिय सुफल,
है फला हे प्रभो ! ज्ञान की शाख पर ॥ हे. ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकी खण्ड द्वीपस्थ विजयमेरु सम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध आतम का वैभव अनमोल है,
क्या करेगा जगत मूल्य इसका प्रभो।

है समर्पित विभूति सभी पुण्य की,
शुद्ध चैतन्य का क्या करें तोल है ॥हे. ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

वीरछंद

विजय मेरु पूरब पश्चिम में हैं विदेह बत्तीस प्रमाण।
सबमें एक–एक तीर्थंकर इक संग हुए नमूँ धर ध्यान॥

एक भरत में और एक ऐरावत में भी हुए प्रधान।
सबने समवशरण तज पाया सिद्ध लोक शाश्वत निर्वाण॥

पृथक-पृथक पूजन करता हूँ जिन देशों में हुए जिनेश।
नगरी के भी नाम कहूँगा धन्य तीर्थंकर परमेश॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

दोहा

पहिले पूर्व विदेह के सोलह जिन तीर्थेश।
विनय सहित अर्पित करूँ भाव अर्घ्य परमेश॥

ताटंक

कच्छा देश विदेह पूर्व में नगर क्षेम अति मनहर है।
तीर्थंकर जिनराज विराजे समवशरण भव दुख हर है॥
ज्ञानपयोनिधि में अवगाहन करने का उपाय जानूँ।
पहिले भेद-ज्ञान जलधारा सर्वोत्तम को पहचानूँ॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुकच्छा क्षेमापुरी में तीर्थंकर प्रभु रहे विराज।
अपना विदेहत्व पाने को आए हैं विदेह जिनराज॥

तत्त्वाभ्यासपूर्वक तत्त्वों का निर्णय मैं करूँ जिनेश।
स्वपर विवेक बुद्धि से निरखूँ अपना आत्मतत्त्व सविशेष ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धीपूर्वविदेहस्य सुकच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महाकच्छा में नगरी श्रेष्ठ अरिष्टा जगत प्रसिद्ध।
शाश्वत विहरमान तीर्थंकर तीन लोक में हैं सुप्रसिद्ध॥
सात तत्त्व में सर्वोत्तम निज आत्मतत्त्व को ही जानूँ।
छह द्रव्यों में भी परमोत्तम आत्मद्रव्य को पहचानूँ ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महाकच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

खंड धातकी देश कच्छावती अरिष्टपुरी छविमान।
गुणशाली तीर्थंकर स्वामी श्री अरहंत देव भगवान॥
नव पदार्थ में भी सर्वोत्तम निज पदार्थ को लूँ पहचान।
पुण्य-पाप सर्वथा नाशकर बनूँ वीतरागी भगवान ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडास्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छकावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवर्त्ता है देश मनोहर खड्गा नगरी भी प्रख्यात।
विहरमान तीर्थंकर करते हैं विहार चहुँदिशि विख्यात॥
सम्यक्-दर्शन की ावन महिमा के गीत, सुनाऊँ मैं।
सप्ततत्त्व श्रद्धान पूर्वक निज पर श्रद्धा लाऊँ मैं ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य आवर्त्तादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश लांगलावर्त्ता का मंगलावती है दूजा नाम।
मंजूषा नगरी मनोज्ञ में तीर्थंकर अनंत गुणधाम॥
श्रद्धापूर्वक सम्यक् ज्ञान महानिधि उर में लाऊँ नाथ।
सकल द्रव्य ज्यों के त्यों जानूं कम या अधिक न जानूँ नाथ ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य लांगलावर्त्तादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकला औषध नगरी में हैं तीर्थंकर जिनराज ।
विरह सताता हमें आपका हे स्वामी निज हित के काज ॥
फिर सम्यक्त्वाचरण प्राप्ति का ही पुरुषार्थ सजाऊँ मैं ।
अति हर्षित हो तीर्थंकर के आगे वाद्य बजाऊँ मैं ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश पुष्पकलावती नगर है पुण्डरीकिणी अति प्रख्यात ।
नाथ विदेही तीर्थंकर सर्वज्ञ देव त्रिभुवन विख्यात ॥
ज्ञान पूर्वक लघु चारित्र स्वरूपाचरण सुपाऊं मैं ।
निज स्वरूप मैं चर्या रत रह नित आनंद उठाऊं मैं ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजययमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वत्सा देश सुसीमा नगरी खंड धातकी में शोभित ।
साक्षात् तीर्थंकर प्रभु के दर्शन कर हम सब मोहित ॥
एकदेश व्रत की महिमा से ओत प्रोत हो जाऊँ मैं ।
एकदेश संयम हित पहिले दर्शन प्रतिमा पाऊँ मैं ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य वत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश सुवत्सा नगर कुन्डला तीर्थंकर महिमा धारी ।
पूज्य विदेही नाथजिनेश्वरअविकलउज्ज्वलअविकारी ॥
एक देश संयम के अन्तर्गत व्रत प्रतिमा पाऊँ मैं ।
अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रत सब पालन कर हर्षाऊँ मैं ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थ विजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुवत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश महावत्सा में नगरी अपराजिता महा सुन्दर ।
तीर्थंकर प्रभु अंतरिक्ष में राजे समवशरण मनहर ॥
तीजी सामायिक प्रतिमा ले समभावी बन जाऊँ मैं ।
दयाभाव उर में धारण कर दशा अहिंसक लाऊं मैं ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महावत्सदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश वत्सकावती मनोहर प्रभंकरा नगरी का नाम।
शाश्वत तीर्थंकर राजे हैं गुण अनंत के पावन धाम॥
चौथी प्रतिमा प्रौषधयुत उपवास करूँ पर्वों में नाथ।
तथा पूर्व ली प्रतिमाएँ भी निरतिचार पालूँ जगनाथ ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्व विदेहस्य वत्साकावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रम्या देश सुनगरी अंकावती तीर्थंकर सुप्रसिद्ध।
विदेहत्व की प्राप्ति हेतु तीर्थंकर पद तज होते सिद्ध॥
पंचम प्रतिमा सचित्त त्याग भी निरतिचार ही पाऊँ मैं।
दयाभाव उर मैं धारण कर दशा अहिंसक लाऊँ मैं ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुरम्या पद्मावती नगर विदेह में है प्रख्यात।
ज्ञानचंद्र किरणावलि मंडल तीर्थंकर प्रभु का विख्यात॥
षष्टम रात्रि भुक्ति पूरी तज दिन में भोजन करूँ विचार।
शुद्ध संयमित प्रतिमा पालूँ मैथुन दिवा करूँ परिहार ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थ विजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुरम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रमणीया है देश शुभानगरी से शोभित गरिमामय।
वीतराग तीर्थंकर प्रभु का समवशरण है महिमामय॥
सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा लूँ शीलस्वभाव सजाऊँ नाथ।
मन-वच-काय त्रियोग पूर्वक महाशील गुण मिले सुनाथ ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थविजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रमणीयादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश मंगलावती रत्न संचयापुरी अब जाउँगा।
तीर्थंकर साक्षात् वंद्य कर शुद्धभाव उर लाउँगा॥
अष्टम प्रतिमा लूँ आरंभ त्याग कृषि वाणिज्ञ सर्व त्यागूँ।
तज आरंभ कृत्य मन वच काया से निज हित में लागूँ ॥१६॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडस्थ विजयमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य मंगलावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई

विजय मेरु पश्चिम में जान, सोलह क्षेत्र विदेह महान।
तीर्थंकर सोलह जिनराज, अर्घ्य चढाऊँ निज हित काज
रोम-रोम पुलिकत हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।
जिनमंदिर में श्री जिनराज, तनमंदिर में चेतन राज॥
एक शतक सत्तर जिनईश, एक संग हो चुके महीश।
भाव सहित बन्दूँ जिनदेव, मैं भी सिद्ध बनूँ स्वयमेव॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

ताटंक

अश्वपुरी नगरी है सुन्दर पद्मादेश मध्य जानो।
तीर्थंकर प्रभु की महान महिमा को अब तो पहचानो॥
नवम परिग्रह त्याग सुप्रतिमा पालूँ इच्छाएँ जीतूँ।
लोभ कषाय नरकगति दाता से पूरा-पूरा रीतूँ॥१७॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुपद्मा सिंहपुरी में वैदेही तीर्थंकर नाथ।
यही भावना भाऊँ स्वामी भव-भव तजूँ न तवपद साथ॥
प्रतिमा अनुमति त्याग दशम ले गृह झंझट से दूर रहूँ।
शुद्ध चिदातम के गुण का परिवार उसी में चूर रहूँ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुपद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महापद्मा में सुन्दर महापुरी वन उपवन युक्त।
तीर्थंकर भी अंतिम शुक्ल ध्यान धर हो जाते हैं मुक्त॥
ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा उद्देशिक भोजन त्याग।
निरतिचार क्षुल्लक पद पालूँ निजस्वरूप से हो अनुराग॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महापद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पद्मकावती राजधानी है सुन्दर विजयपुरी।
तीर्थंकर दर्शन कर पाऊँ आत्मध्यान की श्रेष्ठ धुरी॥
फिर ऐलक पद निरतिचार ले मुनिपद का अभ्यास करूँ।
एक लंगोटी मात्र देह पर राखूँ निज में वास करूँ॥ २०॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धीपश्चिमविदेहस्य पद्मकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शंखा देश नगर अरजा में तीर्थंकर जिनदेव महान।
समवशरण में दिव्यध्वनि से करते भव्यों का कल्याण॥
जब अभ्यास निपुण हो जाऊँ निज हित लूँ सम्यक् निर्णय।
देश काल निज शक्ति तोलकर मुनि बनने का लूँ निश्चय॥ २१॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य शंखा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नलिनी देश नगर विरजा में बहता निर्मल ज्ञानसमीर।
तीर्थंकर जिननाथ हर रहे निकट भव्य जीवों की पीर॥
योग्य सुगुरु के चरणों में जा विनय करूँ मैं बारम्बार।
हे स्वामी जिन मुनिदीक्षा दो मुझे करो भवसागर पार॥ २२॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य नलिनीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुमुदा देश अशोका नगरी अगणित पुष्प वाटिका युक्त।
जिन तीर्थाधिराज परमेश्वर सकल विभाव भाव से मुक्त॥
श्री आचार्य कृपा कर मेरी करें परीक्षा विविध प्रकार।
सफल परीक्षा में होने पर भी गुरु समझायें बहु बार॥ २३॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य कुमुदादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरिता देश वीतशोका नगरी मलयागिरि चंदन सम।
महापूज्य तीर्थंकर दर्शन से क्षय होता मिथ्या भ्रम॥

श्री गुरु ने इस बार प्रार्थना मेरी कर ली फिर स्वीकार।
जिन दीक्षा भगवती मुझे दी पंच महाव्रत दिये विचार ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सरितादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वप्रादेश नगर विजया में सुर-दुन्दुभियाँ बजती हैं।
तीर्थंकर दर्शन करने को विविध नगरियाँ सजती हैं॥
सम्यक् दर्शन पूर्वक जिनमुनि भावलिंग से शोभित हैं।
सम्यक् दर्शन रहित आचरण मुक्तिमार्ग से द्रोहित है ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुवप्रानगर वैजयंती है ध्वजा पताका युक्त।
तीर्थंकर वाणी हृदयंगम करने वाले होते मुक्त॥
धर्म अहिंसा सत्य शील अस्तेय तथा अपरिग्रह रूप।
निरतिचार ये पंच महाव्रत पालन करना साधु स्वरूप ॥ २६ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुवप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावप्रा मनोज्ञ है नगर जयंति है जगमग।
तीर्थंकर जिन शरण मिली तो मानो मिला मोक्ष लगभग॥
पंच समिति का पूरा-पूरा पालन करूँ जिनेश्वर नाथ।
वसु प्रवचनमातृका धारकर तजूँ न शुद्धातम का साथ ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महावप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वप्रकावती नाम दूजा है सुन्दर प्रभावती।
अपराजिता नगर में राजे जिनवर धर्म चक्रवर्ती॥
मनवचकाय त्रिगुप्ति भावलिंगी का स्वगुणजगत विख्यात।
वसु प्रवचनमातृका पालकर पाऊँ केवलज्ञान प्रभात ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंधादेश सुगंधमयी है चक्रपुरी भव चक्र सहित।
तीर्थंकर है सिद्धचक्र पति भावी सर्व विकार रहित॥
दर्शन ज्ञान विनय तप अरु चारित्राचार करूँ पालन।
पंचाचार महान हृदय हों मेरा करें सदा लालन॥ २९॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुगंधा दूजा नाम सुवल्गु सहज कहलाता है।
खड्गपुरी नगरी में तीर्थंकर प्रभाव विख्याता है॥
अट्ठाईस मूल गुण हों तो द्रव्यलिंग कहलाता है।
यह शरीर आश्रित होता है कर्म न क्षय कर पाता है॥ ३०॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुगंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधिला नगर अयोध्या जगपति तीर्थंकर जिनराज।
जिन के चरणकमल को ध्याकर प्राणी पाते निजपद राज॥
एक मूलगुण भी कम हो तो द्रव्यलिंग खंडित होता।
ऐसा प्राणी द्रव्यलिंग से भी न कभी मंडित होता॥ ३१॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधिलादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधमालिनी अवध्या नगरी बहु जन धन सम्पन्न।
विहरमान तीर्थंकर राजे निज रस पीते आत्मोत्पन्न॥
भावलिंग की आशा से जो द्रव्यलिंग धारण करता।
ग्रैवेयक तो पा लेता है पर न आत्मसुख उर भरता॥
भावलिंग युत द्रव्यलिंग ही महापूज्य बतलाया है।
द्रव्यलिंग भी सम्यक् हो तो वन्दन योग्य बताया है॥ ३२॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधमालिनी देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रोला

खण्ड धातकी विजय मेरु अति शोभाशाली।
दक्षिण भरत अयोध्या नगरी भव्य निराली॥
जिन मुनि बन तीर्थंकर होते केवलज्ञानी।
द्रव्य-भाव लिंग धारण कर मैं बन् स्वध्यानी॥ ३३॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी दक्षिणभरत देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विजय मेरु ऐरावत उत्तर नगर अयोध्या।
श्री जिनवर की महिमा है मंगल आराध्या॥
तीर्थंकर प्रभु निजाराधना का करते श्रम।
सफल बनाते निज श्रमणत्व सतत कर उद्यम॥ ३४॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी उत्तरऐरावत देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाअर्घ्य

वीरछन्द

व्यंजन अर्थ उभय-आचार सहित जिन ध्वनि स्वाध्याय करूँ।
योग्यकाल में जिनवाणी पढ़ विनय युक्त आचार करूं॥
हो उपध्यानाचार प्रभो! मैं करूँ ज्ञान का आराधन।
शास्त्रों के पाठी अरु श्रुत का, सदा हृदय में अभिनन्दन॥
शास्त्रों का अरु गुरुवर्यों का भूलूँ नहीं कभी उपकार।
अष्ट अंग युत सम्यक् ज्ञान, समर्पित अर्घ्य महासुखकार॥

खण्ड धातकी विजयमेरु के चौंतीसों जिनराज भजूँ।
पद अनर्घ्य पाऊं हे स्वामी सर्व विकारी भाव तजूँ।

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यऽप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला *

दोहा

लखूँ अबद्धस्पृष्ट निज अरु अनन्य अविशेष।
देखूँ जिनशासन अहो ! द्रव्य-भाव सुविशेष॥
अनुभूति लक्षण यही, ज्ञान ज्ञान को जान।
अन्तर्मुख उपयोग में प्रगटे सम्यग्ज्ञान॥

मानव

शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव, है जिन-शासन का वेदन।
श्रुतज्ञान स्वयं आतम है, जिसका लक्षण है चेतन॥
जब ज्ञानमात्र का अनुभव परिणति में लहराता है।
ज्ञेयाकारों का मुझको तब तिरोभाव भाता है॥

जो ज्ञेयासक्त हुए हैं नहिं स्वाद ज्ञान का जानें।
बह रही ज्ञान की धारा पर वे न उसे पहिचाने॥
व्यञ्जन में लवण मिला है, व्यञ्जन को खारा जाने।
है स्वादलुब्ध वह प्राणी खारापन लवण न माने॥

सामान्य लवण है जैसा, व्यजंन मिश्रित है वैसा।
जो मुख्य दृष्टि में होता वेदन में आता वैसा॥
ज्ञेयाकारों के मिश्रण में तिरोभाव चेतन का।
तब ज्ञेयमात्र अनुभवता, है स्वादलुब्ध आतम का॥

जब ज्ञान मात्र पर दृष्टि ज्ञानी की है जम जाती।
तब स्वाद ज्ञान का आता परिणति निज में रम जाती॥
सामान्य ज्ञान का होता है आविर्भाव निराला।
हूँ एकाकार अखण्डित मैं चेतन लक्षण वाला॥

* यह जयमाला समयसार गाथा १५ की आत्मख्याति टीक का भावानुवाद है।

ज्ञेयाकारों, में भी है बस ज्ञान मात्र का नर्तन।
सामान्य ज्ञान के ही हैं, ये ज्ञेयाकार विवर्तन॥
जो ज्ञेयलुब्ध होते वे, नहिं स्वाद ज्ञान का जानें।
जो ज्ञानमात्र अपनाते विज्ञानघनत्व पिछानें॥

जो अपने से अनजाने वे ज्ञेयलुब्ध रहते हैं।
बस इन्द्रिय-ज्ञान विषय में वे सदा मुग्ध रहते हैं॥
मैं ज्ञान ज्ञेय मैं ज्ञायक, हो यह अखण्ड परतीति।
बस एकाकार चिदातम की हो प्रचण्ड अनुभूति॥
यह ज्ञानमात्र आतम की अनुभूति ज्ञानमय जानो।
ज्ञानानुभूति ही शिवमय आत्मानुभूति ही मानो॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थविजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हरषाइये॥
जिन पूजन आनन्दमयी शिवदाय है।
आत्म तत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है॥
मोहशत्रु का नाश करूँ निजभाव से।
पाऊँ निज पद राज विशुद्ध स्वभाव से॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

४

पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरु संबंधी चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछन्द

खण्ड धातकी अचलमेरु पश्चिम सम्बन्धी क्षेत्र विदेह।
सोलह सोलह पूरब पश्चिम, तीर्थंकर वन्दूँ धर नेह॥
इक ऐरावत उत्तर दक्षिण, भरत एक सब मिल चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य ले पूजन करूँ झुकाऊँ शीश॥

निज स्वरूप में लीन रहूँ प्रभु सम्यक् चारित्र प्रगटाइऊँ।
मोह-क्षोभ से रहित शुद्ध परिणतिमय समता उर लाऊँ॥
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
सर्वकषाय विनष्ट करूँ मैं पहुँचूं मोक्षनगर के द्वार॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थअचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर सवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

गेला

चिदानन्द निज भावों का आह्वान करूँ मैं।
इस क्षण ही सब कर्म शत्रु अवसान करूँ मैं॥
पूजन कर सम्यक् शीतलता उर में आयी।
अचलमेरु चौंतीसों जिन प्रभु मंगलदायी॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थअचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगों को इष्ट-अनिष्ट सदा माना है।
निज की अरुचि भाव से पर का दीवाना है॥
निज की रुचि से आज क्रोध का किया शमन है।
चौतीसों जिनराज चरण में सदा नमन है॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगो से किया सदा अपना मूल्यांकन।
परभावों से क्षत-विक्षत होता यह चेतन॥
निज को जिन सम मान आज यह गौरव पाया।
चौंतीसों जिनराज भजूँ अब चित हरषाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगों की मधुमाया में मस्त हुआ हूँ।
पर में सुख की रही वासना, त्रस्त हुआ हूँ॥
मैं अनन्त सुख का स्वामी यह लख हरषाया।
चौंतीसों जिनराज चरण में शीश झुकाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परद्रव्यों का लोभ जगत में भरमाता है।
किन्तु जीव परभावों में दुःख ही पाता है॥
पर से हो निरपेक्ष प्रभू ! निज को अब ध्याऊँ।
चौंतीसों जिनराज चरण में शीश झुकाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्तानुबंधी तम में निज-पर नहिं जाना।
भेद-ज्ञान का दीप जला निज को पहचाना॥
प्रगट हुई चैतन्य-ज्योति परिणति में छायी।
चौंतीसों जिनराज सुछवि अब मुझको भायी॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ध्यान अनल मैं दग्ध अप्रत्याख्यानावरणी ।
संयम की फैले सुगंध सार्थक सब करनी ॥
निज में लीन रहूँ तब बहती आनन्दधारा ।
चौंतीसों जिनराज चरण मैं नमन हमारा ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रत्याख्यानावरणी क्षयकर मुनि बन जाऊँ ।
निर्ग्रन्थों का पथ अपना कर शिवफल पाऊँ ॥
गुण अनन्तमय निज स्वभाव में सदा रमूँ मैं ।
चौतीसों जिनराज चरण में सदा नमूँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्वलन संज्वलन शमन करूँ यह अर्घ्य चढ़ाऊँ ।
यथाख्यात चारित्र सुपथ पर चरण बढ़ाऊँ ॥
क्षीण मोह हो प्रभुवर यही भावना भाऊँ ।
चौंतीसों जिनराज निरन्तर उर मैं ध्याऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अर्घ्यावली

वीरछंद

अचलमेरु के पूरब पश्चिम क्षेत्र विदेह जगत विख्यात ।
हैं बत्तीस क्षेत्र अतिसुन्दर जिनमें तीर्थंकर प्रख्यात ॥
भरतैरावत एक एक हैं दक्षिण उत्तर द्वय अविकार ।
पृथक पृथक मैं अर्घ्यं चढ़ाऊं मन वच काय त्रियोग संवार ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

दोहा

पहिले पूर्व विदेह के बन्दूँ श्री जिनराज।
अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय से पाऊँ निज पद राज ॥

गीतिका

देश कच्छा नगर क्षेमा अचल मेरु महान में।
तीर्थंकर विराजे अपने चतुष्टय यान में ॥
दर्शनाचारी बनूं मैं पूर्ण समकित प्राप्त कर।
सहज दृष्टा भाव को अपने हृदय में व्याप्त कर ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह सुकच्छा देश नगरी क्षेम भी प्रख्यात है।
तीर्थंकर समवसृत तिहुँ लोक में विख्यात है ॥
ज्ञान आचारी बनूँ मैं प्राप्त सम्यक् ज्ञान कर।
भेद ज्ञान महान पाऊँ पूर्णतः निज भान कर ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुकच्छा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाकच्छा देश में है अरिष्टा नगरी सुभव्य।
तीर्थंकर अंतरिक्ष विराजते हैं सुतन दिव्य ॥
बनूं मैं चारित्रधारी पूर्ण संयम धर अभय ॥
भव समुद्र उलंघकर पाऊँ प्रभो शाश्वत निलय ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महाकच्छा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कच्छकावती देश में यह पुरी नाम अरिष्ट है।
तीर्थंकर देव को शुद्धात्मा ही इष्ट है ॥
तपाचारी बनूं प्रभु इच्छा निरोध सुतप करूँ।
सिद्धपुर की प्राप्ति को शुद्धात्मा का जप करूँ ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश आवर्त्ता नगर खडगा मनोहर जानिए।
श्रेष्ठ गंध कुटी विराजित तीर्थंकर मानिए॥
वीर्याचारी बनूं मैं आत्मबल अपना जगाऊँ।
बल अनंत चतुष्टयी से आत्मा को अब सजाऊँ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य आवर्त्तदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लांगलावर्त्ता मनोहर देश मंजूषा नगर।
तीर्थंकर प्रभु बताते है सभी को शिवपुर डगर॥
ज्ञान दर्शन बल अनंत, अनंत सुख पाऊँ प्रभो।
चतुष्टय निज में रहूं अब सिद्ध पद पाऊँ विभो॥६॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य लांगलावर्त्ता देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पकला है देश औषध नगर विश्व प्रसिद्ध है।
तीर्थंकर द्रव्य ध्रुव तो निकटभावी सिद्ध है॥
आत्म रस परिपूर्ण पाऊँ ज्ञान रस की शक्ति से।
रत्नत्रय तरणी मिले प्रभु चरण युग की भक्ति से॥७॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकला देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पकलावती देश में है नगर शुभ पुण्डरीकिणी।
तीर्थंकर महा महिमा भव समुद्र उतारिणी॥
निजानंदी आत्मा का ध्यान ही सर्वोच्च है।
शुद्ध निजआत्मा अनंतों गुण सहित परमोच्च है॥८॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धीपूर्व विदेहस्य पुष्पकलावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वत्सा सुसीमा नगरी मनोहर स्वर्ग सम।
तीर्थंकर भव्य जन का हर रहे अज्ञान तम॥

बिना समकित ज्ञान दर्शन व्यर्थ है दुखरूप है।
शुद्ध समकित सहित है तो सर्वदा सुखरूप है ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य वत्सा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुवत्सा है देश सुन्दर कुन्डला नगरी सुजान।
तीर्थंकर दिव्य ध्वनि कल्याण करती है महान ॥
जो ज्ञान श्रद्धा सहित है हितरूप है सुखदाय है।
बिना श्रद्धा ज्ञान तो अज्ञान है दुखदाय है ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुवत्सा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावत्सा देश अपराजिता नगरी है प्रधान।
तीर्थंकर हैं विराजित समवशरण महा महान ॥
ज्ञान सम्यक् सहित चारित्र शुद्ध संयमरूप है।
यही है निज आत्मवैभव महामंगलरूप है ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महावत्सा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वत्सकावती देश में है नगर मुख्य प्रभंकरा।
तीर्थंकर परम औदारिक सुतन उज्ज्वल खरा॥
.रत्नत्रय की प्राप्ति दुर्लभ पर सुलभ उस आत्म को।
जो स्वयं कल्याण के हित ध्या रहा परमात्म को ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धीपूर्वविदेहस्यवत्सकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश रम्या नगर अंकावती महिमामय सुनो।
तीर्थंकर नाथ राजे आत्म निज के गुण गुनो ॥
शुद्धआत्म प्रकाश द्वारा आत्मा का हित करो।
नहीं पर की ओर झांको दृष्टि निज परिमित करो ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धीपूर्वविदेहस्यरम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है सुरम्या देश सुन्दर नगर पद्मावती जान।
तीर्थंकर सुछवि लख निज आत्मा की छवि पिछान ॥
तरु अशोक महान लख कर शोक अपना विलय कर।
आत्मा का आश्रय लें सिद्धपुर का निलय वर ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुरम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश रमणीया शुभा नगरी मनोज्ञ महान है।
तीर्थंकर श्रीमंडप सभा द्वादशवान है ॥
पराश्रय का श्रम न कर अब निजाश्रय पुरुषार्थ कर।
चतुर्गति के महादुख अब सभी गिन-गिन पूर्ण हर ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रमणीयादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश मंगलावती नगरी रत्नसंचय कर्म भू।
तीर्थंकर नाथ को पा बन गयी यह धर्म भू ॥
घाति चारों शत्रु हिलमिल सदा से दुख दे रहे।
नाश जो करते इन्हें वे सदा ही सुख से रहें ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य मंगलावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपई

अचलमेरु पच्छिम में जान, सोलह तीर्थंकर भगवान।
धन्य विदेह क्षेत्र विख्यात, जिनध्वनि का झर रहा प्रपात ॥
रोम रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।
जिनमंदिर में श्री जिनराज, तनमंदिर में चेतन राज ॥
एक शतक सत्तर जिनईश, एक संग हो चुके महीश।
भाव सहित वन्दूँ जिनदेव, मैं भी सिद्ध बनूं स्वयमेव ॥

गीतिका

देश पद्मा अश्वपुरी नगरी मनोहर मानिये।
तीर्थंकर प्रभु विराजे समवसृत में जानिये॥
चउ अघाति विनाश कर्त्ता सिद्ध हैं जगदीश हैं।
कर्म रज से रहित हैं ये सिद्धपुर के ईश हैं॥ १७॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पदमादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुपद्मा हैं देश सुन्दर नगर सिंहपुरी महान।
तीर्थंकर चतुष्टय युत अंतरीक्ष विराजमान॥
द्वादशांग महान का तो यही उज्ज्वल सार है।
आत्मा को छोड़कर संसार सब निस्सार है॥ १८॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुपद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महा पद्मा देश में नगरी महापुरी है विशाल।
तीर्थंकर चरण वन्दे हो गया मैं तो निहाल॥
भेद-ज्ञान महान ही विज्ञान है सुख का समुद्र।
बिना इसके अंग ग्यारह ज्ञान भी अज्ञान क्षुद्र॥ १९॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महापद्मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पद्मकावती देश में है नगर विजयपुरी प्रधान।
नाथ तीर्थंकर चरण में निमित इन्द्रादिक महान॥
पूर्ण समकित अष्ट अंगों सहित पाऊँ हे प्रभो।
निःशंकादिक अंग आठों संवारूं प्रतिपाल विभो॥ २०॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्मकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश शंखा नगर विरजा कर्म भूमि प्रसिद्ध है।
गुण अनंतानंत वैभव तीर्थंकर बिद्ध है॥

ज्ञान सम्यक् अष्टमद से रहित होता है सदा।
जाति कुल ऐश्वर्य पूजा आदि हो मद नहिं कदा ॥ २१ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य शंखा देशे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश नलिनी नगर विरजा उपवनों से सुशोभित।
तीर्थंकर समवसृत पर सकल जग है विमोहित।
एक हूँ मैं शुद्ध हूँ मैं ज्ञान दर्शन मय सदा।
हूँ अरूपी नहीं है परमाणु भी मेरा कदा ॥ २२ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिम विदेहस्य नलिनीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश कुमुदा अशोका नगरी है सदैव शोकहर।
तीर्थंकर चरण तल में कमल कंचन मनोहर ॥
शुद्ध आत्मस्वरूप में रह सर्व आस्त्रव क्षय करूँ।
शुद्ध संवर शक्ति से मैं पुण्य-पाप विजय करूँ ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य कुमुदादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सरिता वीतशोका नगर महिमामयी है।
तीर्थंकर बल अनंत प्रसिद्ध त्रिभुवनजयी है ॥
निर्जरा का शस्त्र जब तक हाथ में होगा नहीं।
बंध का अणु एक भी तो निर्जरित होगा नहीं ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिम विदेहस्य सरितादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वप्रा नगर विजया जिन ध्वजों से शोभता।
समवशरण महान तीर्थंकर सकल जग मोहता ॥
निर्जरा है कर्म क्षय में सदा सक्षम जानिये।
निर्जरा बिन कर्म क्षय होते न बिल्कुल मानिये ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुवप्रा है देश मनहर वैजयंती नगर है।
जिनेश्वर का समवसृत तो सिद्धपुर की डगर है॥
बंध का सम्पूर्ण क्षय ही शुद्ध मोक्ष महान है।
एक कण भी बंध है तो नहीं निज कल्याण है॥ २६॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुवप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महा वप्रा देश नगरी जयंती पहचानिये।
इन्द्र शत वंदित जिनेश्वर तीर्थंकर जानिये॥
मोक्षतत्त्व महान की ही प्राप्ति सबसे श्रेष्ठ है।
तत्त्व में यदि भूल है तो यत्न सारा नेष्ठ है॥ २७॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महावप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वप्रकावती देश में अपराजिता नगरी सुजान।
तीर्थंकर प्रभु विराजे हैं समवसृत भी है महान॥
मूल में ही भूल है तो करेंगे कल्याण क्या।
कर्म रज कण एक भी होगा कभी अवसान क्या॥ २८॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधा नगर चक्रपुरी की गरिमा परम।
तीर्थंकर विराजे हैं हर रहे संसार भ्रम॥
भूल को मैं मूल से ही नष्ट कर दूँ इस समय।
आत्मतत्त्व महान का ही प्राप्त कर लूँ आश्रय॥ २९॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह सुगंधा देश खड्गपुरी नगर उत्तम विशाल।
तीर्थंकर चरण वंदन कर अरे होऊँ निहाल॥
शुद्ध दृढ सम्यक्त्व मुझको प्रभु चरण में मिलेगा।
ज्ञान अंबुज निज हृदय में मुस्कुराता खिलेगा॥ ३०॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुगंधा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

गंधिला है देश नगरी अयोध्या है शुभस्वरूप ।
तीर्थंकर निजानंदी रस सहित परमात्मरूप ॥
ध्यान कर परमात्मा का आत्मा ध्याऊँ प्रभो ।
पंचपरमेष्ठी शरण ही सर्वदा पाऊँ विभो ॥ ३१ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधिला देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

गंधमालिनी देश में है अवध्या गरिमामयी ।
तीर्थंकर महामहिमा मानिये है शिवमयी ॥
पंचपरमेष्ठी शरण पहिली दशा में प्रेय है ।
किन्तु अपनी आत्मा की शरण फिर श्रेय है ॥ ३२ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधमालिनी देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ताटंक

दक्षिण भरत अचल में उत्तर नगर अयोध्या गरिममय ।
तीर्थंकर प्रभु समवशरण में शोभित हैं निज में लन्मय ॥
सिद्ध स्वपद पाने का सरल उपाय बताते हैं जिनराज ।
आत्मसिद्धि पुरुषार्थ सरल है आत्मसिद्धि सर्वोत्तम काज ॥ ३३ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी दक्षिण भरतक्षेत्रे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अचलमेरु ऐरावत उत्तर नगर अयोध्या जग विख्यात ।
तीर्थंकर वाणी से होता भेद ज्ञान मय सदा प्रभात ॥
वही सिद्धपद को पाता है जो निजात्मा को ध्यातत ।
अखिल विश्व के सर्व प्रपञ्चों से जो तज देता नाता ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी उत्तर ऐरावतक्षेत्रे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

विरछन्द

सत्य अहिंसा अरु अचौर्य व्रत ब्रह्मचर्य का करूं विचार।
देह मात्र ही रहे परिग्रह पंचेन्द्रिय का नहिं विस्तार॥
ईर्या, भाषा तथा एषणा, निक्षेपण-आदान धरूँ।
प्रतिष्ठापना समिति पूर्वक शुद्ध चिदातम ध्यान धरूँ॥

मन-वच-तन का आलम्बन तजनिज चैतन्य विहार करूँ।
निर्ग्रन्थों का पथ अपनाकर यथाख्यात चारित्र वरूँ॥
खण्ड धातकी अचलमेरु के चौंतीसों जिनराज भजूँ।
पद अनर्घ्य पाऊँ हे स्वामी सर्व विकारी भाव तजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्योअनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

गीतिका

आत्मा में सावधानी है वही निर्बन्ध है।
देह में हो सावधानी उसे ही भवबंध है॥
श्रुत श्रवण जिसको नहीं वो उदय में ही मगन है।
भाव श्रुत जिसको हुआ वो आत्मा में मगन है॥

भाव भासन के बिना समभाव होता ही नहीं।
मैं विकारी भाव का अब तक अभाव न कर सका॥
देह अरु चैतन्य में भी भेदज्ञान न कर सका।
ज्ञान की उज्ज्वल कला का मैं न आदर कर सका॥

परिणमन विपरीत मेरा अधोगति ले जाएगा।
अर्हन्त की तो बात क्या संज्ञी न बनने पाएगा॥
ध्रुव त्रिकाली आत्मा को जानकर अरु ध्यान कर।
पूर्णता का लक्ष्य ले, प्रारम्भ आज महान कर॥

हो न अंश विभाव का तो आत्मरस से ओतप्रोत।
सिंह जैसी गर्जना कर ज्ञान का खुल जाए स्रोत॥
विकल्पों की धधकती भट्टी अभी मैं दूँ बुझा।
बार-बार उपाय अनुपम गुरु रहे कब से सुझा॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हर्षाइये॥
जिन पूजन आनंदमयी शिवदाय है।
आत्म तत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है॥
मोह शत्रु का नाश करूँ निज भाव से।
पाऊँ निज पद राज विशुद्ध स्वभाव से॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

भजन

रोम रोम से निकले प्रभुवर नाम तुम्हारा .. नाम तुम्हारा।
ऐसी भक्ति करूँ प्रभुजी, पाउँ न जनम दुबारा॥ टेक॥
जिन मन्दिर में आकर जिनवर दर्शन पाया।
जिनवर सम निज शुद्धातम का अनुपम दर्शन पाया॥
जनम जनम तक ना भूलूँगा-२ यह उपकार तुम्हारा॥ १॥
अर्हन्तों को जाना शुद्धातम पहिचाना।
द्रव्य और गुण पर्यायों से निज को जिन सम माना॥
सम्यक् दर्शन होता प्रभुवर-२ मोहतिमिर क्षयकारा॥ २॥
पञ्च पाप को त्यागूँ, पंच महाव्रत धारूँ।
निग्रन्थों का पथ, अपनाकर, रत्नत्रय पथ साधूँ॥
पाप पुण्य की बन्ध श्रंखला नष्ट करूँ दुःखकारा॥ ३॥
देव—शस्त्र—गुरु मेरे हैं सच्चे हितकारी।
सहज शुद्ध चैतन्यराज की महिमा जग में न्यारी॥
भेद ज्ञान बिन नहीं मिलेगा-२ भव का कभी किनारा॥ ४॥

५

पूर्व पुष्करार्ध द्वीपस्थ मन्दरमेरु सम्बन्धी चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

पुष्करार्ध की पूर्व दिशा में मंदरमेरु महान प्रसिद्ध।
पूर्व और पश्चिम विदेह के, सोलह-सोलह जिन सुप्रसिद्ध ॥
इक ऐरावत उत्तर-दक्षिण भरत, एक सब मिल चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य ले पूजन करूँ झुकाऊँ शीश ॥
मुक्ति मार्ग पर प्रयाण करके, आत्मोत्पन्न सौख्य पाऊँ।
रत्नत्रय का ही बल लेकर, सिद्ध स्वपद निज प्रगटाऊँ ॥
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
दर्शन ज्ञान चरित्र कला से हो जाऊँ भवसागर पार ॥

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

अवतार

रत्नत्रय निर्मल नीर मिथ्यामल धोता।
नाशूँ भव-भव की पीर मैं निर्मल होता ॥
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन ॥

ॐ ह्रीं पूर्व पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय की शुभ गन्ध, महकी जीवन में।
निज शीतल चेतन चन्द्र भाया अब मन में ॥ हे ॥

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज एक अखण्ड स्वभाव चेतन है पूरा।
रत्नत्रय अक्षत आज पर-आश्रय चूरा॥
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन॥

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन उपवन में आज रत्नत्रय महका।
प्रभु ! काम कलंक विनाश कर जीवन चहका॥ हे॥

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का रस पान करके तृप्त हुआ।
कर क्षुधा रोग अवसान चेतन मस्त हुआ॥ हे॥

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरु संम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय दीप प्रजाल मिथ्यातम नाशूँ।
चैतन्य ज्योति में आज निज-पर अवभासूँ॥ हे॥

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय मय ध्यानाग्नि धू धू धधक रही।
कर कर्म कलंक विनाश परिणति महक रही॥ हे॥

ॐ ह्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं रत्नत्रय फल पाय निश्चय भक्ति करूँ।
शिवफल हित हे जिनराय आतम शक्ति वरूँ॥ हे॥

ॐ ह्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय अर्घ्य बनाय चेतन को अर्पित।
अनुपम अनर्घ्य पद पाय निज में निज अर्पित॥
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन॥

ॐ ह्रीं पूर्व पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

वीरछंद

पुष्करार्ध संबंधी मंदरमेरु पूर्व है मनहारी।
पूरव पश्चिम है विदेह जिनकी शोभा अतिशय प्यारी॥
होते इनके देशों में तीर्थंकर प्रभु बत्तीस महान।
जिनवर दर्शन से होता है भव्य प्राणियों का कल्याण॥

भरतैरावत एक एक है दक्षिण उत्तर क्षेत्र महान।
तीर्थंकर इनमें होते हैं समवशरण युत विश्व प्रधान॥
पृथक पृथक मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ करूँ वन्दना विनय सहित।
पञ्चपाप चारों कषाय से हो जाऊँ मैं पूर्ण रहित॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

चौपाई

क्षेमा नगरी कच्छा देश, यहाँ विराजे हैं तीर्थेश।
आत्मोत्पन्न सौख्य भरपूर, किये घातिया चारों चूर॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुकच्छा क्षेमपुरी, आत्म ज्ञान की ज्ञान धुरी।
तीर्थंकर अर्हंत महान, मुझको दो प्रभु सम्यक् ज्ञान॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुकच्छादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महाकच्छा पावन, नगर अरिष्टा मन भावन।
वीतराग तीर्थंकर नाथ, कभी न बिछुडे तुव पद साथ ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महाकच्छा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहां।

देश कच्छकावती प्रसिद्ध, नगर अरिष्टपुरी सुसमृद्ध।
जिन तीर्थंकर समवशरण, कर्म भार संपूर्ण हरण ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवर्त्ता है देश विशाल, खड़गा नगर चलो तत्काल।
वन्दूं तीर्थंकर परमेश, हो जाऊँ मैं निर्ग्रन्थेश ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य आवर्त्तादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश लांगलावर्त्ता जान, मंजूषा नगरी छविमान।
नमन तीर्थंकर जिनराज, मैं भी पाऊँ निज पद राज ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य लांगलावर्त्ता देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकला औषध ग्राम, तीर्थंकर अनंत गुण धाम।
दिव्य ध्वनि का देते दान, होता जीवों का कल्याण ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसबन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकलावती महान, पुण्डरीकिणी नगरी जान।
हैं तीर्थेश ज्ञान सज्जित, कोटिक सूर्य चंद्र लज्जित ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वत्सा देश महासुन्दर, नगर सुसीमा छवि मनहर।
वीतराग जिन तीर्थंकर, दो सम्यक्त्व सप्तभय हर ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य वत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देशा सुवत्सा जाऊँ आज, नगर कुन्डला है जिनराज।
आत्मतत्व का करूँ विचार, निज परिणति की करूँ संवार ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुवत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावत्सा डगरी, अपराजिता दिव्य नगरी।
पाऊँ तीर्थंकर की छांव, उनसे बूझूँ अपना नाव ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महावत्सादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वत्सकावती नगर, है प्रभंकरा पुण्य डगर।
पाऊँ तीर्थंकर की छांव, उनसे पूछूँ अपना गाँव ॥१२॥

ॐ ह्री श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसंम्बन्धी पूर्वविदेहस्य वत्सकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रम्या देश महा दर्शनीय, अर्कावती नगर रमणीया।
वन्दनीय तीर्थंकर नाथ, समवशरण हो गया सनाथ ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुरम्या यश का धाम, पद्मावती नगर है नाम।
दर्शनीय है समवशण, वन्दूँ जिन तीर्थेश चरण ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुरम्यादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रमणीया है देश महान, नगरी शुभा वापिकावान।
अर्चनीय जिनचरण कमल, दर्शन से हो भाव विमल ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रमणीयादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश मंगलावती समृद्ध, रत्नसंचया नगर प्रसिद्ध।
जिन तीर्थंकर महिमावान, अन्त समय जाते निर्वाण ॥१६॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य मंगलावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई

मंदरमेरु विदेह विहान, पश्चिम सोलह जिन भगवान।
अर्घ्य चढ़ाऊँ पृथक-पृथक, श्रमण बनूं श्रम करूं अथक॥
रोम रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।
जिन मंदिर में श्री जिनराज, तन मंदिर में चेतन राज॥
एक सतक सत्तर जिनईश, एक संग हो चुके महीश।
भाव सहित वन्दूँ जिनदेव, मैं भी सिद्ध बनूँ स्वयमेव॥

चौपाई

पद्‌मा देश विदेह मझार, अश्वपुरी नगरी सुखकार।
तीर्थंकर प्रभु परम पवित्र, चित्रित इनके उर में चित्र॥१७॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्‌मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुपद्मा शोभायुक्त, सिंहपुरी उपवन संयुक्त।
तीर्थंकर प्रभु का जय घोष, गूंज रहा देता संतोष।१८॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुपद्‌मादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महापद्मा द्युतिमान, महापुरी सुन्दर छविमान।
तीर्थंकर को करूँ प्रणाम, भाव सहित वन्दूँ वसुयाम॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महापदमादेशे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहां।

देश पद्‌मकावती जिनेश, अंकावती नगर तीर्थेश।
तीर्थंकर की देह प्रसिद्ध, परमौदारिक पुद्‌गलबिद्ध॥२०॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्‌मकावतीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शंखा देश नगर विख्यात, अरजा नगरी है प्रख्यात।
नाम सहस्त्र जपें देवेश, तीर्थंकर का हो उपदेश॥२१॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धीपश्चिमविदेहस्य शंखादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नलिनी देश नगर विरजा, भव-भव की उलझन सुरझा।
तीर्थंकर छवि अति द्युतिवान, मैं भी हो जाऊँ भगवान ॥ २२ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धीपश्चिम विदेहस्य नलिनीदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुमुदा देश मध्य तीर्थेश, नगर अशोका है परमेश।
ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता न विकल्प, आत्मज्ञ जिन प्रभु अविकल्प ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धीपश्चिमविदेहस्य कुमुदादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरित देश की सरितायें, नगर वीतशोका जायें॥
तीर्थंकर प्रभु भी आयें, इन्द्रादिक मंगल गायें ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सरितदेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वप्रादेश नगर विजया, सर्वोत्तम जिन धर्म दया।
तीर्थंकर ने यही किया, वीतराग निज भाव लिया ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थमंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुवप्रा चलो सजन, नगर वैजयंती चेतन।
तीर्थंकर चिन्मय चिद्रूप, ज्ञानामृत रस पान अनूप ॥ २६ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुवप्रा देशे विराजमान श्री तीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावप्रा है दिव्य, नगर जयंती में बहु भव्य।
समवशरण जिनवर दृष्टव्य, तीर्थंकर जिन श्रुत ज्ञातव्य ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महावप्रा देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वप्रकावती नगर, अपराजिता प्रसिद्ध डगर।
तीर्थंकर जिनवर भगवान, त्रेसठ पुरुष शलाका जान ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसंम्बन्धी पश्चिम विदेहस्य वप्रकावती देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंधा देश चक्रवती, चक्रपुरी नगरी धरती।
धर्मचक्र धारी तीर्थेश, मैं भी आत्मधर्म चक्रेश ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुगंधा खड्गपुरी, बंद करूं प्रभु राग धुरी।
तीर्थंकर सर्वज्ञ प्रधान, सिद्ध चक्र लेंगे भगवान ॥ ३० ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुगंधादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधिला जगत प्रसिद्ध, नगर अयोध्या पूर्ण समृद्ध।
तीर्थंकर जिनराज असिद्ध, यह पद तजकर होते सिद्ध ॥ ३१ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधिलादेशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंधमालिनी दो सुगंध, नगर अवध्या महा सुगंध।
गूंजे तीर्थंकर जय छंद, आस्रव भावों पर प्रतिबंध ॥ ३२ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधमालिनी देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राधिका

है पुष्करार्ध मन्दर गिरि दक्षिण भारत।
है नगर अयोध्या तीर्थंकर भू शास्वत ॥
प्रभु अन्तरंग भावन्ना शुद्ध हो निर्मल।
चैतन्य सरोवर में स्नान कर उज्जवल ॥ ३३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी दक्षिणभरत देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर ऐरावत मन्दर मेरु सुपावन।
है नगर अयोध्या तीर्थंकर मन भावन ॥
दर्शन विशुद्धि भावना प्रथम मैं माऊँ।
भव सागर तरने की विधि को अपनाऊँ ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी उत्तरऐरावत देशे विराजमान श्री तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाअर्घ्य

वीरछंद

पर्यायों से दृष्टि हटाकर, शाश्वत ध्रुव में जम जाऊँ।
भेद-ज्ञान का दीप जलाकर, संशय, विभ्रम विनशाऊँ॥
निज स्वभाव में रमकर जमकर, पाप-पुण्य का करूँ विनाश।
रत्नत्रय की निधियाँ पाकर, शिवनगरी में करूँ विलास॥
दर्शज्ञान चारित्रमयी है, साध्यसिद्धि का खरा उपाय।
यदि रत्नत्रय प्राप्त न हो तो, व्यर्थ सभी हैं बाह्य उपाय॥
मंदरमेरु पुष्करार्ध की, पूर्व दिशा में शोभित है।
अर्घ्य समर्पित चौंतीस जिनको, सुर-नर-मुनि मन मोहित है॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला *

दोहा

दर्श-ज्ञान-चारित्रमय, एक मुक्ति का मार्ग।
साध्यसिद्धि की यह विधि, अन्य सभी उन्मार्ग॥

वीरछंद

जैसे धन का अभिलाषी, धनवानों की सेवा करता।
उनकी श्रद्धा और ज्ञानकर उनका पथ ही अनुसरता॥
मात्र मुक्ति की अभिलाषा से जीवराज को मैं जानूँ।
श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र भाव से शिवपुरपथ निश्चित मानूँ॥
साध्यभूत निष्कर्म अवस्था इसी मार्ग से होती प्राप्त।
अन्यमार्ग से अनुपपत्ति है कहते सदा जिनेश्वर आप्त॥
भेदों के मिश्रण में भी अनुभूति मात्र मैं ज्ञानस्वरूप।
भेद-ज्ञान की कला कुशलता, देखूं निज चेतन चिद्रूप॥

*** यह जयमाला समयसार गाथा १७-१८ की आत्मख्याति टीका का भावानुवाद है।**

अपने को अनुभूति मात्र मैं , जानूँ ऐसी करूँ प्रतीति ।
हो निःशंक प्रवृत्ति आत्म में, साध्य-सिद्धि की यही सुरीति ॥
यह अनुभूति स्वरूप आत्मा ज्ञान तरंगों में उछले ।
पर से है एकत्व जिसे, उस मूढ़बुद्धि को नहीं मिले ॥

मैं अनुभूति स्वरूप मात्र यह आत्मज्ञान यदि उदित न हो ।
तो श्रद्धान नहीं होगा फिर चेतन निज में मुदित न हो ॥
साध्यसिद्धि की अनुपपत्ति से भव-भव के दुःख पाये हैं ।
किन्तु जिनेश्वर के प्रसाद से मंगलमय दिन आए हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये ।
उनकी गौरव गाथा सुन हरषाइये ॥
जिनपूजन आनन्दमयी शिवदाय है ।
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है ॥
मोह शत्रु का नाश करूँ निज भाव से ।
पाऊँ निज पद राज विशुद्ध स्वभाव से ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दश दिशो धाम्ना निरून्धान्ति ये ।
धामोद्दाम महस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये ॥
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम् ।
वन्द्यास्तेऽष्ट सहस्त्र लक्षण धरा- स्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥

—आत्मख्याति : आचार्य अमृतचन्द्र

६

पश्चिम पुष्करार्ध द्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरु सम्बन्धी चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछंद

पुष्करार्ध पश्चिम में विद्युन्मालीमेरु महान प्रसिद्ध ।
पूर्व और पश्चिम विदेह में सोलह सोलह जिन सुप्रसिद्ध ॥
इक ऐरावत उत्तर दक्षिण भरत एक सब मिल चौंतीस ।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य ले, पूजन करूं झुकाऊं शीष ॥

वस्तुस्वरूप विचार करूं मैं, मन भी अब पावे विश्राम ।
निर्विकल्प रस पान करूं मैं, अनुभव है आगम में नाम ॥

आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार ।
शिवपुरपथ पर गमन करूँ मैं आत्मतत्त्व का ले आधार ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थविद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवोषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थविद्युन्मालीमेरु सम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थविद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

राधिका

मैं निर्विकल्प अनुभव जल लेकर आऊँ ।
जो है अनादि का मोह-कलंक नशाऊँ ॥
जिनचरणों में यह निर्मल नीर चढ़ाया ।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैतन्यचन्द्र की शीतल अनुभव किरणें।
आताप नशूं आनन्द के झरते-झरने॥
मलयागिरी चन्दन जिन-चरणों में लाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अवलम्बन लिया आज चेतन का।
क्षत-विक्षत होकर मोह क्षीण आतम का॥
धवलोज्ज्वल अक्षत प्रभु चरणों में लाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थविद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह जगत सदा ही मोह शत्रु से हारा।
अनुभव के शर ने काम शत्रु को मारा॥
अब जिन चरणों में भक्ति-सुमन ले आया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थविद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभव रस पी मैं पूर्ण तृप्त हो जाऊँ।
चिर ज्ञेयलुब्धता को परिपूर्ण नशाऊँ॥
आनन्द अतीन्द्रिय रसमय भोग लगाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थविद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं निर्विकल्प अनुभव का दीप जलाऊँ।
चैतन्य ज्योति से मोह-तिमिर विनशाऊँ॥

कैवल्य किरण में आत्म सूर्य दिखलाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मानुभूति का धूम्र व्योम में छाया।
है द्रव्य-भाव-नोकर्म आज विनशाया॥
शुभ भक्ति राग यावक में अशुभ जलाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं निर्विकल्प अनुभव रसमय फल पाऊँ।
शुभ अशुभकर्म के फल से दृष्टि हटाऊँ॥
परमार्थ भक्तिमय अनुपम फल अब पाया।
चौंतीसों जिनकी छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है गुण अनन्त का वैभव निज चेतन में।
शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव निज वेदन में।
अब पद अनर्घ्य पाने को अर्घ्य चढ़ाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

वीरछंद

विद्युन्माली पंचमगिरि के सम्बन्धी जिनवर चौंतीस।
एक शतक सत्तर में ये सब आ जाते है प्रभु जगदीश॥
तन मन धन सब करूँ समर्पित निज परिणाम संवारूँ नाथ।
अपनी जर्जर तरणी भवसागर से पार उतारूँ नाथ॥

दोहा

वन्दूँ पूर्व के विदेह सोलह जिन तीर्थेश।
पृथक्-पृथक् अर्पित करूं अर्घ्य पूज्य परमेश॥

चौपाई

कच्छा देश प्रसिद्ध मनोहर, नगरी क्षेम लोक में सुन्दर।
सर्व श्रेष्ठ जिनवर तीर्थंकर, भव्यों के सब दोष क्षयंकर॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य कच्छादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुकच्छा शोभा शाली, क्षेमा नगरी महिमा वाली।
तीर्थेश दिव्यध्वनि पायी, शुद्धातम की महिमा आयी॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महाकच्छादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महाकच्छा मन भावन, नगर अरिष्टा जिनवर पावन।
तेरह विधि चारित्र धरूँ मैं, अनुभव रस के कलश भरूँ मैं॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुकच्छादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश कच्छकावती सुहाना, नगर अरिष्टपुरी सुख नाना।
तीर्थंकर की महिमा न्यारी, निज स्वरूप ही शिव सुखकारी॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महाकच्छकावती देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवर्त्ता है देश मनोहर, खडगा नगर श्रेष्ठ तीर्थंकर।
पंच महाव्रत सम्यक् पालूँ, निज स्वरूप ही देखूँ भालूँ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य आवर्त्तदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश लांगलावर्त्ता जाउं, मंजूषा तीर्थंकर ध्याऊँ।
परम अहिंसा धर्म दया मय, षट्कायक रक्षा हो निश्चय॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य लांगलावर्त्तदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकला महा मनोहर, औषध नगरी जिन तीर्थंकर।
सत्यधर्म ही अति महिमामय, हितमितप्रिय वचनामृत सुखमय ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वत्सा देश सुसीमा नगरी, जिनवर कथनी उत्तम सगरी।
पूर्ण अचौर्य सुव्रत स्वीकारूँ, पुण्य-पाप सारे निरवारूं ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुसीमादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश पुष्पकला वती सुसुन्दर, पुण्डरीकिणी नगर मनोहर।
तीर्थंकर के चरण पखारूँ, निज स्वरूप की ओर निहारूँ ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य पुष्पकलादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुवत्सा नगर कुन्डला, तीर्थंकर ध्वनि महा मंगला।
महाशील व्रत सुखदायी है, ब्रह्मचर्य ही शिवदायी है ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुवत्सादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावत्सा मन भावन, अपराजिता जिनेश्वर पावन।
अपरिगृह व्रत पूर्ण अनिच्छुक, महामोक्ष सुख का मैं इच्छुक ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य महावत्सादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश वत्सकावती मनोहर, प्रभंकरा नगरी तीर्थंकर।
पूर्ण देश हों पंचमहाव्रत, पालन कर पाऊँ सुख शाश्वत ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य वत्सकावती देशस्थतीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

रम्या देश बड़ा गरिमामय, अंकावती नगर जिन छवि मय।
पंचसमिति प्रभु धारण कर लूं, षटकायक रक्षा उर धर लूँ ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रम्या देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुरम्या जिन तीर्थंकर, पद्मावती नगर में शिव कर।
पालूँ ईर्या समिति जाग्रत, निज स्वभाव में हो जाऊँ रत ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य सुरम्यादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रमणीया है देश निराला, नगर शुभा है महिमा वाला।
तीर्थंकर सर्वज्ञ जिनेश्वर, श्री अरंहत महा परमेश्वर ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य रमणीयादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश मंगलवती महाना, रत्नसंचया नगर सुहाना।
तीर्थंकर जिन प्रभु को ध्याऊँ, भाषा समिति मौन हो जाऊं ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पूर्वविदेहस्य मंगलावतीदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छंद चौपई

भाव सहित वन्दूं जिनदेव, मैं भी सिद्ध बनूं स्वयमेव।
अब पश्चिम विदेह जिनराज, अर्घ्य चढ़ाऊं शिव सुख काज ॥
सोलह क्षेत्र महान सुजान, सोलह तीर्थंकर भगवान।
रोम-रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥
जिन मंदिर में श्री जिनराज, तनमंदिर में चेतन राज।
एक शतक सत्तर जिन ईश, एक संग हो चुके महीश ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

चौपई

पद्मादेश पूर्ण सक्षम है, अश्वपुरी नगरी अनुपम है।
तीर्थंकर जिनचरण निहारूँ, समिति एषणा सम्यक् धारूँ ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्मादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुपद्मा तीर्थंकर है, सिंहपुरी नगरी जिनवर है।
लहूँ समिति आदान निक्षेपण, पर विभाव सब नाशूं तत्क्षण ॥ १८ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुपद्मादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महापद्मा अब जाऊँ, महापुरी तीर्थंकर ध्याऊँ।
प्रतिष्ठापना समिति धार लूँ, अब तो हर सब भव विकार लूँ ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महापदमादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश पद्मकावती सुहाना, विजयपुरी है नगर महाना।
तीर्थंकर के चरण पखारूँ, पंच समिति धर दोष निवारूँ ॥ २० ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य पद्मकावतीदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शंखा देश जिनेश्वर राजे, अरजा नगरी मध्य विराजे।
तीन गुप्ति पालूँ हे स्वामी, ज्ञान सिन्धु हे अन्तर्यामी ॥ २१ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य शंखा देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नलिना देश में तीर्थंकर हैं, विरजा नगरी के भीतर हैं।
मनोगुप्ति यह मनवश करलूँ, मनोजनित दोषों को हरलूँ ॥ २२ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य नलिनीदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुमुदा देश अशोका नगरी, तीर्थंकर की महिमा सगरी।
वचन गुप्ति की महिमा न्यारी, महामौन व्रत है दुखहारी ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य कुमदा देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सरित देश श्री तीर्थंकर प्रभु, नगर वीतशोका में जिन विभु।
काय गुप्ति मैं पालूँ पूरी, नहीं भावना रहे अधूरी ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सरित देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वप्रा देश नगर विजया है, तीर्थंकर उपदेश दया है।
तीन गुप्ति मैं पालू पूरी, नहीं भावना रहे अधूरी ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य वप्रा देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देश सुवप्रा तीर्थंकर प्रभु, नगर वैजयंती महान विभु।
तीनों गुप्ति समुज्ज्वल पालूँ, सकल पाप कर्म धो डालूँ ॥ २६ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुवप्रादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश महावप्रा महिमामय, नगर जयंती है गरिमामय।
वसु प्रवचन मातृका ध्यानमय, प्रभु भविष्य में रहूँ ध्यानमय ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य महावप्रादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश व्रप्रकावती जिनेश्वर, अपराजिता नगर परमेश्वर।
पंच समिति त्रय गुप्ति जानलो, वसु प्रवचनमातृका मान लो ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्कार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य व्रप्रकावतीदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंधादेश तीर्थंकर है, चक्रपुरी में परमेश्वर है।
दर्शन-ज्ञानमयी मैं चेतन, सदापूर्ण आपूर्ण ज्ञानघन ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधा देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश सुगंधा नगर खड्ग पुरी, तीर्थंकर जिन छवि शिवपुरी।
आत्मज्ञान आवश्यक पहिला, यही मुक्ति का साधन उजला ॥ ३० ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य सुगंधादेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश गंधिला सुषमा शाली, नगर अयोध्या जिनवर लाली।
चार कषायें सर्व विनाशूं, अपना शुद्ध स्वरूप प्रकाशूं ॥ ३१ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधिला देशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध मालिनी देश निराला, नगर अबध्या जन धनवाला।
यहाँ महान तीर्थंकर हैं, सुर नर वंदित अभ्यंकर हैं ॥ ३२ ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी पश्चिमविदेहस्य गंधमालिनीदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीर छन्द

पुष्करार्ध विद्युन्माली का दक्षिण भरत महान प्रसिद्ध।
नगर अयोध्या तीर्थंकर प्रभु जिनकी गरिमा विश्व प्रसिद्ध॥
मंगलमयी जिनागम की महिमा का लाभ उठाऊँगा।
स्व-पर भेद-विज्ञान जगा प्रभु निज स्वभाव में आऊँगा॥ ३३॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी दक्षिणभरतदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विद्युन्माली उत्तर ऐरावत में नगर अयोध्या जान।
तीर्थंकर की महिमा जानँ् शुद्धातम से कर पहिचान॥
सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चरणमय मोक्षमार्ग पर करुँ प्रयाण।
द्रव्य - भाव - नोकर्म नाशकर हे प्रभु पाऊँ पद निर्वाण॥ ३४॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी उत्तर ऐरावतदेशस्थ तीर्थंकरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाअर्घ्य

वीरछंद

महा-पुण्य से पाया है श्री देव-शास्त्र-गुरु का संयोग।
स्वाध्याय के द्वारा जानूँ जड़-चेतन का पूर्ण वियोग॥
सात तत्त्व का सम्यक् निर्णय दर्शनमोह मन्द करता।
निर्विकल्प अनुभूति भाव से चेतन कर्मबन्ध हरता॥
गुणअनन्त का अक्षय वैभव बहती अनुभव रस की धार।
नय प्रमाण का पक्ष न जिसमें झरता है आनन्द अपार॥
पुष्करार्ध के पश्चिम में है विद्युन्माली गिरि शोभित।
अर्घ्य समर्पित चौंतीस जिन को सुर नर मुनि सब हैं मोहित॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्कारार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जिनशासन का मर्म जो, द्वादशांग का सार ।
अनुभव रस का पान कर, होऊँ भवदधि पार ॥
दर्श-ज्ञान-चारित्रमय, परिणमता जो आर्य ।
कहते निज संचेतना अमृतचन्द्राचार्य ॥

वीरछंद

मैं अनादि से मोहित हो, उन्मत्त हुआ हूँ अप्रतिबुद्ध ।
भव-भोगों से जो विरक्त, श्री गुरु समझाकर करें प्रबुद्ध ॥
जैसे कोई पुरुष हस्तगत, स्वर्ण निधि को भूल गया ।
अपने परमेश्वर को भूला, पुण्य-उदय में फूल गया ॥

अपने को जानूँ पहचानूँ और उसी में लूं विश्राम ।
अपने में अपना अनुभव कर, होता सम्यक् आतमराम ॥
चैतन्य मात्र ज्योतिमय हूँ, अपने अनुभव से जान रहा ।
भेद रूप क्रम-अक्रम भाव से, भिन्न एक पहचान रहा ॥

नवतत्त्वों से भिन्न शुद्ध टंकोत्कीर्ण मैं ज्ञायक भाव ।
मैं सामान्य विशेष रूप, उपयोगमयी चिन्मात्र स्वभाव ॥
गन्ध-वर्ण-रस स्पर्श निमित्तक होते संवेदन परिणाम ।
वर्णादिकमय नहिं परिणमता अतः अरूपी आतमराम ॥

यद्यपि मुझसे भिन्न सभी परद्रव्य स्वयं में शोभित हैं ।
किन्तु एक परमाणु मात्र में कभी न चेतन मोहित है ॥
अतः मोह उत्पन्न न होगा, भावक-ज्ञेय रूप पर से ।
मोह समूल विनष्ट हुआ है, ज्ञान-ज्योतिमय निज रस से ॥

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

---

१. यह जयमाला समयसार गाथा ३८ की आत्मख्याती टीका का भावानुवाद है ।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हरषाइये॥
जिन पूजन आनन्दमयी शिवदाय है।
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है॥
मोह शत्रु का नाश करूँ निज भाव से।
पाऊँ निजपद राज विशुद्ध स्वभाव से॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

समुच्चय अर्घ्य

दोहा

अजितनाथ के काल में तीर्थंकर जिनराज।
एक शतक सत्तर हुए, हर्षित सकल समाज॥

हरिगीतिका

निज आत्मा का ज्ञान अरु निज तत्त्व का श्रद्धान कर।
निज आत्मा में लीन होकर मुक्ति पथ पाया प्रवर॥
कैवल्य किरणों से प्रकाशित आत्म रवि है चमकता।
लोक और अलोक का वैभव समूचा झलकता॥

अनन्त दृग अरु ज्ञान से षट् द्रव्य-गुण-पर्याय का।
सामान्य और विशेष अवभासन समस्त पदार्थ का॥
नित सुख अतीन्द्रिय भोगते, हे योग बिन योगीश तुम।
निज बल अनन्तानन्त से, हे गणधरों के ईश तुम॥

हे मुक्तिपथ नायक महा ज्ञायक समूची सृष्टि के।
हे कर्म भूभृत के विदारक तुम्हीं हो वर दृष्टि के॥
यह अर्घ्य है अर्पित प्रभो! अन् अर्घ्य पद की कामना।
भी नहिं रहे अब वृत्ति में, तुम सम बनूँ निष्कामना॥

एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं भेद की भी वासना॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपञ्चविदेहभरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तरतीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाजयमाला

दोहा

धन्य दिवस मंगल घड़ी धन्य हुए परिणाम।
चिदानन्द चैतन्य में, पाऊँ पूर्ण विराम॥
इक शत सत्तर देव की, पूजन करके आज।
जन्म सफल मेरा हुआ पाऊँ निजपद राज॥

वीरछंद

हे जिनेन्द्र ! उर सिंहासन पर तेरे चरण विराजे आज।
जन्म-जन्म के पाप नशे, चित् चरण-कमल में राजे नाथ॥
सम्यक्त्व सुमन है खिला आज, तेरे दर्शन की किरणों से।
चैतन्य वाटिका में बहार आई तेरे शुभ वचनों से॥

अब भेद-ज्ञान का दीप जला निज को निज पर को पर जानूँ।
चैतन्य ज्योति की आभा में चेतन का वैभव पहचानूँ॥
कब वेश दिगम्बर धारणकर में पंच महाव्रत पालूँगा।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चलकर रत्नत्रय निधियाँ पा लूंगा॥

चढ़ शुक्ल ध्यान की श्रेणी पर कब चार घातियां नष्ट करूँ।
कैवल्य-किरण से ज्योतित हो चहुँगति का भ्रमण विनष्ट करूं॥
फिर योग निरोध सहज होगा चैतन्य सदन मैं पूर्ण विलास।
हो कर्म अघाति नष्ट सभी शिव नगरी में हो पूर्ण निवास॥

आज जिनेश्वर की पूजन से चेतन में चित् ललचाया।
पंचेन्द्रिय वैभव तृष्णा तज निज वैभव मन में भाया॥
तेरे चरणों में वन्दन कर बस यही भावना हो साकार।
सहज शुद्ध चैतन्य राज का परिणति में प्रगटे आधार॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपञ्चविदेह भरतैरावतस्थितएकशतसत्तर तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीरछंद

ढाई द्वीप में एक साथ जो हुए तीर्थंकर भगवान।
एक शतक सत्तर जिनेन्द्र की पूजा कर पाऊँ निज भान॥
श्री जिनेन्द्र की पूजन का है यह पुनीत उद्देश्य विशेष।
बोधिलाभ हो सुगति गमन हो निजगुण संपति मिले जिनेश॥

पुष्पाजंलिं क्षिपेत्

शांति पाठ

चान्द्रायण

परम शांति के सागर तीर्थंकर प्रभो।
पूर्ण भक्ति से पूजा है तुमको विभो॥
अखिल विश्व में पूर्ण शान्ति हो हे जिनेश।
ईति भीति भय भ्रान्ति सर्व क्षय हो महेश॥
जिनशासन से सुरभित प्रभु यह लोक हो।
ज्ञान सुरभि से सुरभित निज चिल्लोक हो॥
इसीलिए जिनपूजन की मैंने प्रभो।
परम शान्ति हो परम शान्ति हो हे विभो॥

पुष्पाजंलिं क्षिपेत्

नौ बार णमोकार मंत्र के माध्यम से पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण करें।

क्षमापना

दोहा

भूलचूक जो भी हुई कीजे क्षमा प्रदान।
तीर्थंकर जिनदेव प्रभु महिमामयी महान॥
आत्म ध्यान में रत रहूँ पाऊँ सम्यक् ज्ञान।
आप कृपा से हे प्रभो करूँ आत्मकल्याण॥

अनुष्टुप

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥
सर्व मंगल माङ्गल्यं, सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आचार्य एवं प्राचीन विद्वानों के ग्रंथ

समयसार/प्रवचनसार/नियमसार/अष्टपाहुड़
पंचास्तिकायसंग्रह/मोक्षशास्त्र/भावदीपिका
समयसार नाटक/मोक्षमार्गप्रकाशक/सत्तास्वरूप
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय/छहढाला/चिद्विलास
स्वरूपसंबोधन/सम्यग्ज्ञानचंद्रिका/दीपचंद ग्रंथमाला
परीक्षामुख/इष्टोपदेश एवं समाधितंत्र/परमात्मप्रकाश
वारसाणुवेक्खा/क्षत्रचूड़ामणि/समयसार कलश
कार्तिकेयानुप्रेक्षा/बृहद् द्रव्यसंग्रह/आत्मानुशासन
रत्नकरण्ड श्रावकाचार/लघुतत्त्व स्फोट
ज्ञानानन्द श्रावकाचार/योगसार प्राभृत

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

प्रवचनरत्नाकर भाग 1 से 11 तक/नयप्रज्ञापन
मोक्षमार्ग प्रवचन भाग-1,2,3,4/ज्ञानगोष्ठी
वी.वि. प्रवचन भाग 1 से 6 तक/कारणशुद्धपर्याय
समयसार नाटक प्रवचन/नियमसार प्रवचन
बृहदद्रव्यसंग्रह प्रवचन/भक्तामर प्रवचन
दिव्यध्वनिसार प्रवचन/समाधितंत्र प्रवचन
श्रावकधर्मप्रकाश/ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव
अध्यात्मरत्नत्रय/अध्यात्मसंदेश/ज्ञानगोष्ठी
मुक्ति का मार्ग/पदार्थ-विज्ञान/योगसार प्रवचन
कारणशुद्धपर्याय/नयप्रज्ञापन/मूल में भूल
अष्टपाहुड़ प्रवचन/अलिंगग्रहण प्रवचन
अनुभवप्रकाश प्रवचन

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रकाशन

समयसार(ज्ञायकभावप्रबोधिनी)/समयसार का सार
समयसार अनुशीलन सम्पूर्ण भाग 1,2,3,4,5
प्रवचनसार (ज्ञायज्ञेयप्रबोधिनी)/प्रवचनसार का सार
प्रवचनसार अनुशीलन भाग-1 से 3
चिन्तन की गहराईयाँ/सत्य की खोज/बिखरे मोती
बारह भावना : एक अनुशीलन/धर्म के दशलक्षण
आत्मा ही है शरण/सूक्तिसुधा/आत्मानुशासन
पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व/निमित्तोपादान
47 शक्तियाँ और 47 नय/रक्षाबन्धन और दीपावली
तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ
भ. ऋषभदेव/प्रशिक्षण निर्देशिका/आप कुछ भी कहो
क्रमबद्धपर्याय/दृष्टि का विषय/गागर में सागर
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव/अध्यात्मनवनीत
परमभावप्रकाशक नयचक्र/छहढाला का सार

आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पच परमागम
पश्चात्ताप/मैं कौन हूँ/मैं स्वयं भगवान हूँ
णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन/अर्चना
रक्षाबंधन दीपावली/युगपुरुष कानजी स्वामी
रीति-नीति/गोली का जवाब गाली से भी नहीं
शाश्वततीर्थधाम : सम्मेदशिखर/बिन्दु में सिन्धु
अहिंसा : महावीर की दृष्टि में/शाकाहार
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर
अनेकान्त और स्याद्वाद/पंचकल्याक प्रतिष्ठा महो.
समयसार पद्यानुवाद/समयसार कलश पद्यानुवाद/
प्रवचनसार/योगसार पद्या./अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद
कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद/शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के प्रकाशन

सम्यग्दर्शन/हरिवंश कथा/शलाका पुरुष
जान रहा हूँ देख रहा हूँ/जम्बू से जम्बूस्वामी
सुखी होने का उपाय भाग 1 से 8 तक
विदाई की बेला/जिन खोजा तिन पाईयां
ये तो सोचा ही नहीं/अहिंसा के पथ पर
सामान्य श्रावकाचार/षट्कारक अनुशीलन
सुखी जीवन/विचित्र महोत्सव/क्षत्रचूड़ामणि परि.
संस्कार/इन भावों का फल क्या होगा
यदि चूक गये तो/ऐसे क्या पाप किये
णमोकार महामंत्र/चलते-फिरते सिद्धों से गुरु
पर से कुछ भी संबंध नहीं/नींव का पत्थर

अन्य प्रकाशन

चौबीस तीर्थंकर महापुराण/बृहद जिनवाणी
जिनेन्द्र अर्चना/तीनलोकमंडल विधान
सिद्धचक्र विधान/मोक्षमार्ग की पूर्णता
इन्द्रध्वज विधान/धवलासार/द्रव्य संग्रह
रामकहानी/गुणस्थान विवेचन/रत्नत्रय विधान
निर्विकल्प आत्मानुभूति के पूर्व/जैनतत्त्व परिचय
कल्पद्रुम विधानरत्नत्रय विधान/नवलब्धि विधान
बीस तीर्थंकर विधान/पंचमेरु नंदीश्वर विधान
करणानुयोग परिचय/शीलवान सुदर्शन
आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार
आध्यात्मिक भजन संग्रह/चौबीस तीर्थंकर पूजा
चौसठ ऋद्धि विधान/दशलक्षण विधान
पंचपरमेष्ठी विधान/विचार के पत्र विकार के नाम
जिनधर्म प्रवेशिका/व्रती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ